

गंडाबाजा परंपरा का सामान्य परिचय

भारत, एक ऐसा देश है जहाँ पेड़-पौधे, नदी-झरने आदि की प्राकृतिक शोभा अवर्णनीय है। आवर्तन-विवर्तन चक्र के परिक्रमण के बाद भी, एवं विदेशी संस्कृति से प्रभावित होने के बाद भी इसने अपनी मूलता नहीं छोड़ी, यह भारतीयों का चमत्कार है। आदिमानव से लेकर आदिवासी, अधिवासी जाति धर्म से ऊपर उठकर सभी ने अपनी – अपनी संस्कृति नहीं छोड़ी। आधुनिकता के साथ –साथ आदि परंपरा भी समान गति से खिल रही है।

कुछ ऐसी ही सांस्कृतिकता से पला-बढ़ा प्रदेश है ओडिशा, एवं इसका पश्चिमांचलकी कुशलता में प्रवीण होने के कारण कोशल नाम से विख्यात है। ओडिशा के इष्ट है श्री जगन्नाथ महाप्रभु, जो कि लकड़ी से अर्द्धगठित देवता है। तथ्य कहता है कि आदिवासियों का ख्रम्वेश्वर या कन्दादो ही जगन्नाथ है, एवं श्री जगन्नाथ ही संगीत के प्रतीक हैं।

अतः आदिवासियों को देवी-देवता का विश्वास होने के कारण आदिवासियों को छोड़कर सांगीतिक कल्पना निरर्थक होगी। प्रकृतिप्रिय आदिवासी ने प्रकृति से उत्पन्न ध्वनि समूह का अनुसरण एवं अनुकरण करते हुए सर्वप्रथम भूमि दुन्दुभि की कल्पना की। धीरे धीरे अग्रसर होते हुए संगीतमय ध्वनिमय संसार ने महाजागतिक संगीत को पहचाना। उनकी जिज्ञासा बढ़ने लगी और आदिमानव पवन, अग्नि से परिचित हुआ, द्वेत, गोष्ठी करते हुए विभिन्न प्रकार की आदिवासी जातियों में विभाजित हो गये। गाँव-शहर का गठन होने लगा। संहति के लिए प्रकृति पूजन होने लगा। अभी तक ओडिशा में विभिन्न प्रकार के आदिवासी हैं। सभी संप्रदाय के ईष्ट अलग-अलग नाम से जाने जाते हैं। इसके साथ साथ प्रत्येक विभाग को एक देवता के नाम से जाना गया है।

हर एक देवी-देवता के लिये, एक विशेष वाद्य एक छन्द निरूपित है। इसके साथ साथ कौन से देवी देवता की किस प्रकार की ध्वनी से उपासना की जाए चाहे अनाहत हो या आहत। पहले तो पत्थरों, लकड़ियों को पीटकर, सीना पिछवाडा, छाती पीटकर ध्वनियों के प्रकारों की पहचान हुई। पाँच प्रकृति से निकली पाँच प्रकार की ध्वनियों के लिए पाँच प्रकार के बाजों का निर्माण कर अनुसरण किया गया।

आदिवासी जितना कठोर परिश्रमी है, उतना ही भोगी एवं जिदखोर प्राणी हैं। किसी प्रकार की चिन्ता उन्हें स्पर्श नहीं करती। काम करके खाने वाले सरल आदिवासी अपनी धर्म इच्छा के विरुद्ध लड़ने में माहिर थे। इतिहास गवाह है कि विश्व में जहाँ जहाँ आदिवासी हैं

वहाँ वहाँ कर्मठ, योद्धा, प्रकृतिप्रिय और सरल मानव मिलेंगे । संगीत उनका परम प्रिय है ।

भारत के पूर्व प्रांत ओडिशा में परिवर्तन होने लगे । आदिवासियों के बाद द्राविड, आर्य आने लगे । बराबर संघर्ष होता गया । चालाक आर्य उस समय इतने विद्वान नहीं थे । एवं आदिवासियों की प्रकृति पूजन से वे प्रभावित होकर या आध्यात्मिक, सामाजिक से वैदिक के साथ सहोदरभाव, मनोरंजन के जरिये संहति रक्षा, तथा उदर पोषण के लिए संस्कृति को सम्मिलित करने का कौशल आहरण करने के बाद आदिवासियों के संग रहने लगे और आज भारत आर्यावर्त के नाम से परिचित होने लगा ।

इतना सब होने के साथ मनुष्य द्वारा मनुष्य को अछूत कहना या करना अब तक जारी है । सांविधानिक व्यवस्था लोगों को प्रभावित नहीं कर पायी । ओडिशा में भी अछूत परंपरा जारी है । किसी धर्म परंपरा में कुछ जाति सामिल नहीं हो सकते । उनके आने या छूने से धर्मानुष्ठान को अपवित्र मानलिया जाता है । उदाहरण स्वरूप – जगतनाथ – जगन्नाथ मंदिर में चण्डाल का प्रवेश निषेध है ।

एक समय आदिवासी संप्रदाय कंध, दार्शनिक कवि भीम भोई ने सुधार प्रचेष्टा की थी । लेकिन उनको मंदिर से खदेड़ दिया गया ।

धर्म के नाम पर उच्च वर्ग शासन चलाया गया, छूत अछूत प्रथा का शिकार कोशलांचल या पश्चिम ओडिशा की एक प्रसिद्ध गंडा जाति भी अछूता न रहा । उनके हाथों से सभी प्रकार के काम किये जाएंगे, उनके संगीत से जनसमूह को उत्साह प्रदान किया जायेगा । गाँवों का चौकिदार रखा जायेगा, लेकिन कुछ छू लेने से अपवित्र हो जाएगा । एक अद्भूत परंपरा प्रचलित होती आ रही है ।

बजाने वाली जाति

जात का नाम गण्डा क्यों ?

क : आदिवासी श्रेणीय गण्ड जाति जो अतीत जमींदार, गउँतिया, गाँवों के मुखिया थे । उनके शासन में मदद के लिए यह जात काम करते थे । 'गंड' जाति के सेवक होने के कारण संभवत इन्हें 'गंडा' कहा गया होगा ।

ख : सबसे कठिन चर्म युक्त पशु, जिसके अंग एक लोहे सांजु जैसे रहते हैं । उस पशु को कोशलांचल या पश्चिमांचल में 'गण्डा' कहते हैं । गण्डा जैसा जात का शरीर सख्त कर्मवीर होने के नाते शायद यह जात गण्डा जात नाम से परिचित हुई ।

ग : आर्ये के प्रभाव से भारत विशेष रूपसे प्रभावित हुआ । उनके द्वारा संगीत को दो भागों में विभक्त किया गया था । १.सामगान, २.गन्धर्व गान ।

साम गान केवल मात्र यज्ञानुष्ठान में परिवेषण होता था किंतु गन्धर्व गान समाज के सब जगहों में प्रचलित था । सामगान की समय सीमा से गान्धर्व गान की सीमा जथेष्ट है । इतने लम्बे समय संगीत को टिकाये रखने के लिए अंतर्शक्ति और बाह्य शक्ति का प्रावल्य अत्यावश्यक है, जो कि गण्डा जात में सम्भव होता था । श्वतः शरीर तथा विभिन्न परिवेशण धारा में समाज को आकृष्ट कर रखना गंधर्व से 'गण्डा' अपभ्रंम हो कर हुआ होगा ।

जो भी हो पश्चिम ओडिशा कोशलांचल का गण्डाजात चौषठि कला में पारंगम थे । कुछ कलाएँ समय चक्र में पिस कर अवलुप्त हो गये पर अभीभी गण्डा जात आपनी कलाकारी में माहीर है ।

गण्डा जाति का संक्षिप्त परिचय

ओडिशा सरकार के द्वारा स्थापित –Tribal and hrijan Research Cum training institute Bhubaneswar, Odisha द्वारा श्री नीत्यानंद पट्टनायक एवं शरत चन्द्र महान्ति द्वारा लिखित –The Gonda a Scheduled Caste weaver communication of western odisha नामक पुस्तक में लिखते हैं ।

समग्र ओडिशा में गण्डा जात (तपसिल भुक्त) वृहत संख्या में हैं । समग्र पश्चिमांचल के हर जिले, गाँव में गण्डा जात की बसति देखी जाती है । विशेष कर बलांगिर, सम्बलपुर जिलों में वृहत संख्या में वसवास करते हैं । प्रायतः उनकी बयन बृत्ति वन्द हो गयी । साधारण बुत्ति व बस्त्र बयन, संगीत चौकिदारी खबरी इत्यादि थी । वर्तमान

वस्त्र बयन प्रायतः बंद हो गया । मील फैक्ट्री बनने के कारण उनके वस्त्रों की माँग घट गयी । बड़ी बड़ी दुकानें विज्ञापन ने उनकी वृत्ति को बाधा पहुँचाई । साप्ताहिक बाजार बंद होने से लोगों में इसकी रुचि घटने लगी । ये प्रत्यक्ष ग्राहको से विच्छिन्न हो गये ।

स्वाधिनता पूर्वकाल में बंजर जमीन को कृषि उपयोगी बनाने के कठिन कार्य के साथ साथ घर बनाने के उपकरण संग्रह तथा निर्माण के श्रमिक या दादन हो गये, केवल मात्र रहगया संगीत और केबल मात्र व्यवसायिक रूप में । वैदेशिक ब्याण्ड वाजा में श्रद्धा हेतु गंडाबाजा लुप्त हो जाता किन्तु, उस जातकी कला चातुरी जन जीवन में जड़ित हो जाने के कारण तथा अपने मनो रंजन के लिए व्यवहार होने हेतु इतना बड़ा धरोहर बच गया ।

गण्डा वाजा के वारे में जात के साथ साथ उनके वजाने की शैली को सर्वोपरि आदिवासियों ने ही प्रोत्साहन दिया है, क्योंकि आदिवासी ही सरल जीवन यापन, करने वाले कर्मठ, कठिन परिश्रम तथा प्रचण्ड योद्धा है तथा उनका हर कार्य में गण्डा बाजा बजना जरूरी मानते हैं । सर्व प्रथम भूमि दुंदुभी उद्भावन कर्ता आदिवासी को प्रायतः महाजागतिक संगीत में प्रगाढ रुचि थी ।

प्रकृति के हर तरफ एक एक देवता को मान्यता देते हैं और उस देवता को जन देवता स्वीकार कर महाजागतिक संगीत से अनुकरण कर उप्तन्न छंद ज्ञान को अपने शरीर में देवत्व अवतरण कराने की क्रिया को अपनाते हैं । वह क्रिया वह प्रथा सर्वमान्य होता है ।

पंचं प्रकृति से उत्पन्न महाजागतिक संगीत को गण्डा जात द्वारा संस्कारित पंचवाद्य के ध्वनात्मक युक्त ध्वनि को अपने शरीर में कर्ण द्वारा प्रवेश कराते हैं । एकाग्र चित्र स्थिर आसन तथा आध्यात्मिक परिवेश हेतु निर्धारित देवता के लिए निर्धारित छन्द ध्वनि कर्ण में प्रवेश मात्र से ही अष्टांग शरीर क्रियाशील हो उठता है । कंपित हो कर एक भिन्न जगत में प्रवेश कर जाता है । जिसके आदिवासी तथा उनके साथ साथ अधिवासी भी स्वीकार करते है कि मानव शरीर में देवत्व जाग्रत हो गया है या हो सकता है ।

गण्डा वाजा में ऐसा कौनसा गुण है जो कि मनचेतन में उसका प्रभाव पडता है । इस विषय पर धीरे धीरे अग्रसर होंगे । भारत वर्ष में लोकधारा के साथ लोक वाद्य, नृत्य, गीत आदि युग से विद्यमान हैं । पर पाश्चिम ओडिशा या कोशलांचल लोक संस्कृति एक स्वतन्त्र लोक धारा के अन्तर्गत आने के कारण हर तरह से आलोचना विधेय मानते हैं ।

गंडा बाजा के साथ सम्पर्क मे गंडा जाति ही क्यों :

यह चिन्तन या अन्वेषण करने से पता चला है कि जिन पाँच बाजों का गंडा जाति प्रयोग करती है वह लकड़ी, लोहा, मिट्टी और बांस, पीतल, ताम्बे आदि धातुओं के मिश्रण से तैयार किया जाता है, एवं यही कारण है कि यह बाजे सब भारी होते हैं। यह बाजा सिर्फ बैठकर नहीं बजाया जाता, इन भारी बाजाओं को कंधा कमर गले में बांधकर दूर-दूरान्तक बजाकर जाना होता है। जो कि एक साधारण मनुष्य के लिए कठिन कार्य है। परन्तु बड़ी आसानी से यह जाति इस कार्य को सम्पादन कर पाती है। इसी कारण इसे बजाने वाले कलाकार का नाम गंडा एवं बाजा का नाम गंडा बाजा नाम से प्रचलित है। विशेषतः यह कोशलांचल या पश्चिमांचल ओडिशा में बहुत प्रसिद्ध है।

(ख) यह बाजा बजाने की एक स्वतन्त्र शैली है ?

स्थानीय अनुसंधान के द्वारा अबतक जितना संपर्क किया गया है इन सब गाँवों और कलाकारों का परिचय संक्षिप्त रूप में वर्णन करते हुए ऑडियो – विडियो के जरिये अवगत कर प्रेरित किया गया है।

गाँवों के नाम :

१. सिलेट पाड़ा
२. गम्भारी खेला
३. गंजा उडार
४. भैसा
५. पाटनागड
५. सुवर्णपुर

गंडा संप्रदाय के इतिहास के सम्पर्क में कोई सठिक तथ्य अभी तक नहीं मिल पाया है। सरकार की संरक्षण व्यवस्था, सहयोग और शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति के कारण पुरातन बुजुर्ग नागरिकों से अपनी जाति का इतिहास संग्रह नहीं कर सके। अब बहुत सारे लोगों से भिन्न तथ्य मिल रहे हैं।

उनका कहना है कि हमारी इस गंडा जाति का नाम राजतन्त्र शासन काल से ही प्रचलित हुआ। उच्चाशिक्षित विद्वान श्री तूलाराम कलेत अपने पुर्वजोंसे सुने हुए एक लोक कथा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि- भारत मे आदिवासी तो थे ही, पर उनके साथ गंडा जाति भी थी। परन्तु उनका नाम गंडा नहीं था। जिस समय आदिवासी अंचल में बहिरागत द्राविड आदिवासी भारत में प्रवेश किये, तब बराबर युद्ध होता था। आदिवासियों के गुप्तचर दुत यह गंडा जाति वाले थे। उनके मुखिया का नाम विद्याधर था। आदिवासियों के अन्तर्गत गंडा सम्प्रदाय को ऊँचा माना जाता है। उनके साथ रहने अथवा कार्यों में सहयोग करने से उनको लोकमुख (लोगों द्वारा) में गंडा कहा गया।

और कुछ लोगों का कहना है कि राजतन्त्र शासन काल में एक सामाजिक दण्ड था, गोष्ठी से विताडित करना। काल क्रमानुसार कुछ निर्वासित लोग, गाँवों मे रहते हुए भी

अलग गोष्ठी में बंट गये, एवं गाँवों के हित के लिए प्रबल परिश्रम करने के कारण उनका नाम गंडा जाति हो गया ।

अभिमत – इससे प्रतीत होता है कि व्यवहारिक दृष्टि से आर्य – अनार्य, दोनो के मध्यस्थ होते हुए इस जाति को दलित, पतित, अस्पृश्य जाति में गिना गया होगा ।

पश्चिम ओडिशा के श्री शिव प्रसाद दाशजी द्वारा लिखित सम्बलपुर “इतिहास” में पृ- १४” पर लिखित गंडा जाति के संबन्ध में :पूर्व ओडिशा की पाण जाति जो व्यवसाय करती थी पश्चिम ओडिशा की गंडा जाति भी वही व्यवसाय करती थी । फिर भी पाण और गंडा जाति एक नहीं है ।

पाण –

पाण जाति तामिल देश का “पानन” और परिआ जाति का वंशज है । नाग वंशी के साथ यह पाण जाति दक्षिणात्य से आयी थी । पूर्वकाल में यह जाति समाज में एक उच्च आसन पाती थी और तामिल, दक्षिणात्य, कलिंग में संगीत गायन कर्म करते थे ।

इससे यह प्रतीत होता है कि कलिंग उत्कल को छोड़ कोशलांचल की यह अछुत गंडा जाति स्वतन्त्र है ।

गंडा जाति – यह गंडाजाति भी उत्तर/पश्चिम भारत से आयी है । “गंडा” शासन काल में गंडा जाति एक स्पशक्त जाति थी तथा साहसी, बलवान, बुद्धिमान के कारण हेतु सीमांत अंचल की निगरानी के लिये नियुक्त होती थी । समय समय पर प्रतिवेशी द्वारा गंडो का परस्व हरण होता था । प्रतिवेशी राज्य द्वारा इसी तरह लूट से बचाने के लिये गंडा जाति को गुप्तचर, मृदु युद्ध सैनिक के रूप में नियुक्त किया जाता था । ये गंडा समाज पुरुषानुक्रम से गावों का चौकिदार कार्य करते आये हैं । गंडा, घासी, चमार आदिवासी नहीं है पर कोशलांचल का मूल अधीवासी है और आदिवासीओं का मित्र है ।

उनका कहना है हमारी जाति को ब्राह्मणवाद के कारण समाज के मर्यादापूर्ण आसन से नीचे धकेल दिया गया । अपने स्वार्थ के कारण हमारी जाति को पतित कर अपना स्वार्थ साधन करने लगे । ब्राह्मणवादि को भय हो गया कि अगर अध्ययन अध्यापना कर समाज में रहेंगे तो गंडा जाति का कौशल, बल, विश्वासी, कलानिपुणता के गुणों को अपने स्वार्थ के लिये व्यवहार नहीं कर पाएँगे ।

कोशल के लोकवाद्य में गंडाबजा

कोशलाचल लोकवाद्य संचयन

भारत वर्ष में जितने सारे बाद्य यन्त्र का संचयन हुआ है शायद ऐसा कोई प्रदेश होगा जहाँ इतने सारे बाद्य यन्त्रों का प्रचलन हो । अबतक ओडिशा पश्चिमांचल या कोशलांचल में क्या क्या बाद्य प्रचलित हैं और उसके संचयन आवश्यक क्यों ? इस प्रश्न के समाधान के लिए शास्त्र के आधार पर वाद्य समूहों का विभागीकरण दर्शाया गया है ।

पश्चिम ओडिशा अथवा कोशलांचल में प्रचलित वाद्ययन्त्रों के प्रकार

पुनः इस विषय की आलोचना करने का अभिप्राय यह है कि वाद्य यंत्रों के भेद तथा ध्वनी गुण का परिचय विस्तार रूप से हो । इसके साथ आगे तुलनात्मक अध्ययन के समय सहायक होगा ।

संगीत शास्त्रानुसार समग्र बाद्य यन्त्रोंको ४ भागों में विभक्त किया गया है । क- अवनद्ध, ख-सुसिर, ग- घन, घ-तत ।

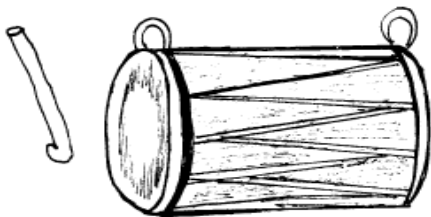
श्रेणीय वाद्यों को पश्चिम ओडिशा में दो प्रकार में विचार करते हैं । क- किरण या स्याहि मुक्त, ख- किरण युक्त या स्याहियुक्त । यह दोनों प्रकार आदि परंपरा तथा संस्कारित परंपरा के रूप हैं ।

जिस वाद्य में स्याहि या किरण नहीं लगता वह बाजा निश्चित रूप से आदि परंपरान्तर्गत वाद्य है । भारतीय तथा पाश्चात्य सभ्यता में अभी भी किरण मुक्त बजाता है । पर ध्वनात्मक गुण यहाँ के वाजा से भिन्न है तथा प्रभाव में भी विभिन्नता देखी गयी है । इस कोशलांचल में जितने सारे बिना स्याहि के बाजे बजाते हैं उन बाजों के नाम ध्वनि प्रभाव, प्रयोग विधि, सब विषयों पर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा ।

बिना स्याहि (किरण) अवनद्ध बाद्य

नाम

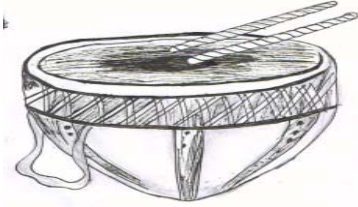
ढोली



धुमसा या लोहा



निषान



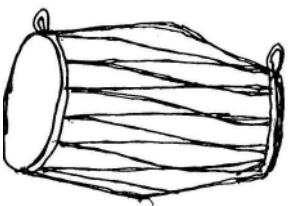
टिमकी या टिमकिडि



तासा



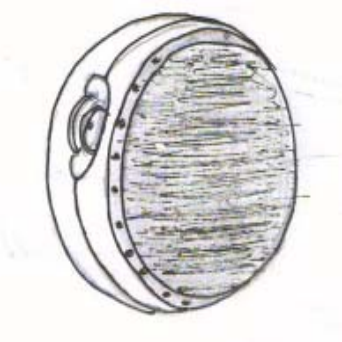
दण्ड ढोल



ढाप



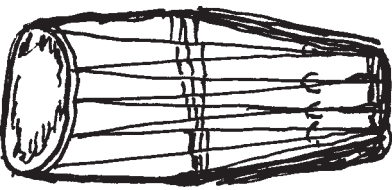
खजनी



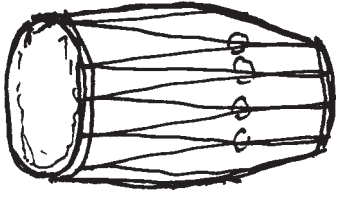
घुमरा



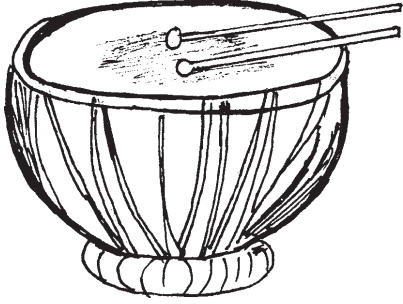
ढोलक



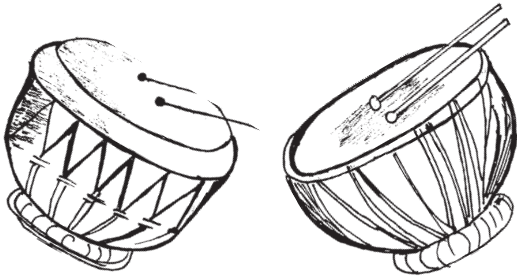
दुलकी



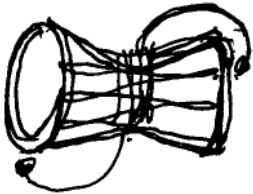
डिगंरा



नागरा (जुडी)



डमरु



मठिआ

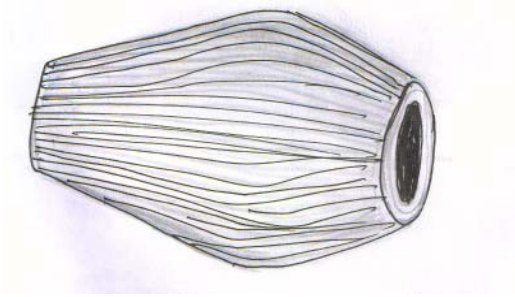


स्याहि युक्त अवनध्द बाजा

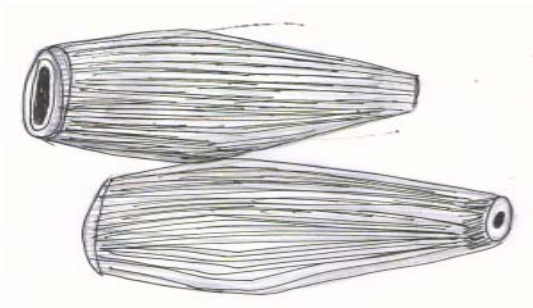
मान्दल



मृदंग रंगी



मृदंग उदण्ड



मृदंग संप्रदा

मर्द्दल

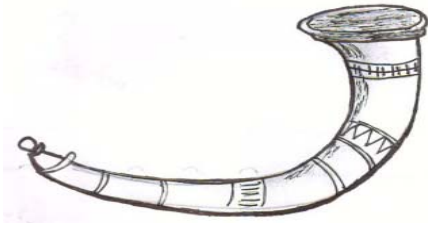
पंकज या पखबज

सुसिर वाद्य

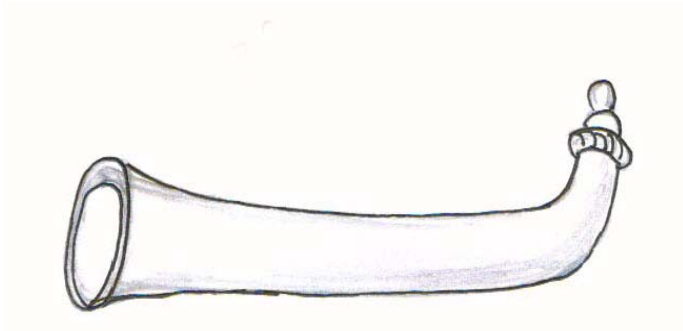
मुहरी



भेरी



तुरी



बीर काहली



सिंघा



आड बँशी



ठाड बँशी



भालु बँशी



घन बाद्य

गीनो



कुबजी ,



कुबजा,



ताल,



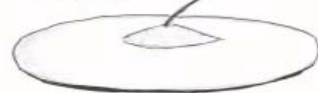
कस्ताल,



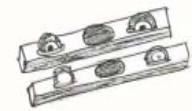
कस्ताली,



झांज,



रामतालि,



काठी,



गउर बाडी,



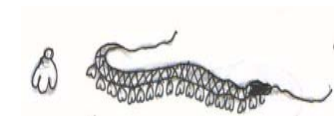
कलंगा बाडी,



खिडकी खिचा,



घुंगुरु,



नूपुर,



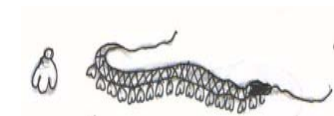
घँटि,



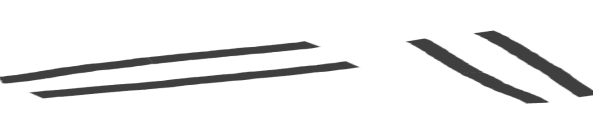
घागुडि,



घुल घुला,

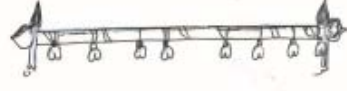


झलाजल,



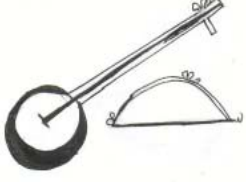
बिनावाडि





तत् बाद्य

सारंगी,



केंदरा,



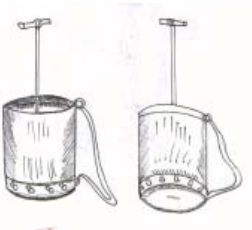
देब गुनिआँ,



गुपि तारा,



घुबुकुडु,



इन सब बाद्यों के अलवा और एक सर्व प्राचीन बाद्य है वह उपरोक्त चारों विभागों से संपर्कित है वह है “धुन केल”।

उपसंहार : यह सब बाद्य यन्त्र भूमि दुंदुभी से क्रम विकाश आवर्तन विवर्तन चक्र से आविष्कार होते गये। प्राचीन प्रस्तर युग के अंतिम भाग में भूमि दुंदुभि का मिट्टीकी खाई पाकर या पत्थर के संस्कार से भूमि दुंदुभि के आविष्कार के पश्चात यह मिट्टि, काष्ठ, तथा लौह से बनने लगे। भूमि दुंदुभि जब मानव परिवार में रहने लगे तब ढोल का आविष्कार हुआ। कुछ दिनों तक मिट्टि की दुंदुभि और ढोल में अपना भाव व्यक्त करते करते स्थूल-सुक्ष्म ध्वनी का अनुभव होना और उसके अनुकरण से टिमकि या टिमकिड़ि तत् पश्चात ‘तासा’ और अन्तिम में सिंघा से मुहुरी का आविष्कार हुआ।

यह तथ्य क्षेत्र परिदर्शन के उपरान्त वयोज्येष्ठ कलाकार तथा गुरुओं से प्राप्त हुआ। उनका कहना है कि मानव के विकाश के साथ साथ पंच भूत बा, पा,ओ, मा, आ अर्थात् बा से बायु, पा-से पानी, ओ-ऊर्जा,मा- माटि, आ -आकाश। पंचभूत का एक स्वतन्त्र रूप से एक एक ध्वनि है और पंच ध्वनि सम्मिलित होकर महाजागतिक संगीत का रूप लिया है। यह ध्वनि समूह को आदिमानव से लेकर नूतन प्रस्तर युग तक सुनते सुनते अनुकरण प्रीय हो गये और स्वतन्त्र रूप से पंचभूत की ध्वनि की तरह अपनी कल्पनानुसार एक बाद्य यन्त्र आविष्कार कर अपना चतुर्विध कार्यों में उपयोग करने लगे।

यह अविष्कृत पंच वाद्य बहुत भारी एवं बजाने में बहुत कठिन है। प्रकृति के साथ रहने वाले जीव परिस्कार रह नहीं सकता उसी तरह प्रकृति से अनुकरण किये वाद्य यन्त्रों को बजाने वालें कलाकार परिष्कार रह नहीं सकता, इसीलिए इन कलाकारों को शूद्ध मानव होने के नाते ‘गण्ड’ कहा गया। इ अपरिष्कार होने के कारण उनको अस्पृश्य कहा गया होगा।

शून्य से शब्द, शब्द से ब्रह्मा यह सृष्टि। श्रृष्टि से सर्वोत्कृष्ट जीव मानव का विशेष गुण विवेक है। उसके सहारे पंचभूत को महिमा का परिचय करना तथा रस, भाव, का अनुभव करके पंचभूत से पांच वाद्य आविष्कार की विशेषता कोशलांचल में देखने को मिलता है। मूलतः पाँच संख्या के बारे में प्रागैतिहासिक युग के मानव का ज्ञान होना आश्चर्य तो है ही पर भारत का विशेष संस्कृतिक गुण भी है। प्राग ऐतिहासिक वेद उपनीषद, पुराण, कर्म काण्ड, आदि सभी में सभी मनुष्यों का समान विचार व्यक्त किये हैं।

प्रकृति- पंचभूत - जल, अग्नी, माटि, बायु, आकाश

आप, तेज, बायु पृथ्वी, आकाश संस्कृत
वेद पाँच – रुग, यजुर, शाम, अथर्व, और शिशुवेद या नाट्य शास्त्र
पाँच मन – मन, अमन, सुमन, कुमन, बिमन,
पंच ज्ञानेन्दीय – कान, चर्म, आँख, जिह्वा, नाशिका
पंच प्राण – प्राण, आप्राण, ब्यान, उदान, समान
पंच कोश – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, बिज्ञानमय, आनन्दमय

पंच कारण – अधिष्ठान, कर्ता, करण, बिबिध चेष्टा, दैव
पांच इन्द्रिय – बाक , पाणी, पाद, पायु और उपस्थमन ।
पांचापचार – आसन, पादासन, धूप, दीप और न्यैबेद्य
पंचबाद्य, – ढोल, निषान, टिमिकिडि व टमक, तासा, महुरी,
पंच रस– शान्त, दास्य, साख्य, वात्सल्य, और माधूर्य
और अनेक प्रकार की उपमाएँ हैं । विषय के ऊपर ध्यान देते हुए पाँच प्रकार के बाजों को
लेकेर कुछ सहरी सभ्यता के लोगों ने पंच वाद्य या दुलदुली नाम दिया है । परन्तु यह पांच
प्रकार के बाजे को बहु पुरातन काल से 'गण्डा' वाजा के नाम से परिचित है । बेतार ओर
दूर दर्शन आने से यह वाजा का बहुल प्रचार हुआ है परन्तु 'गण्डा' जात द्वारा वजाये
जाने वाले गुढ तत्व तक पहुँच नहीं पाये । प्रथमतः मुक्ताकाश में बजाये जाने वाले वाद्य
सीत ताप नियन्त्रित कक्ष में वजाया गया, आधुनिक मसीन के ग्रहण की क्षमतानुसार
आघात को नियन्त्रित किया गया । द्वितियतः पूर्व पुरुषो से पंरमपरा गत उत्तर पीढी तक
वजाते आ रहे कलाकारों को न तो सम्मान दिआ गया या उनमें ध्वनी और छन्द विज्ञान
को आहरण करने के लिए आग्रह किया गया । लोक धारा के नाम से अन्य प्रान्त की लोक
संस्कृति को अनुकरण कर एक नुतन धाराका प्रचलन होने लगा । पांच प्रकार बाद्य यन्त्रों
का व्यबहार हुआ जो कि ढोल निषान तासा के बदले टिपरा या जोडि नागरा का दक्षिण
भाग वाद्य यन्त्र, केसिओ तो कहीं कहीं वेग पाइपर का निचला हिस्सा वजाने लगे । यह
सब तो यंत्रों के जरिए तन, मन, धन और सम्मान के लिए बदल दिए । शायद उन्होंने इस
बदलाव को उचित माना होगा । पर भारत वर्ष में यदि आदि युग से परिचित कोशल का
गंडा वाजा संस्कृति में ध्वनि मिश्रण, विभिन्न छन्दों में पार (ताल) का धरोहर हाथ से
विछड गया । लोक संस्कृति गावँ में वजते वजते रुग्ण होने लगी और शहरी शिक्षित वर्ग
संगीतज्ञों ने एक नूतन धारा का प्रचलन करके दुल दुली – आदि और क्या क्या, जिल्ला

सहर के नाम से प्रचलित करके राजनैतिक पृष्ठपोषकता से मान, सम्मान, उपाधि अदि के योग्य कहलाने लगे । विलुप्त होने लगा हजार हजार वर्षों से प्रचलित मानव समाज के मंगलार्थ विनियोग होने वाला आदि वाद्य । इस वाद्य और इसे वजाने वाले गंडा कलाकारों को अपसंस्कारित कहने के कारण से अपनी कौलिक दृष्टि हटने लगी । आखिर क्षति ग्रस्त्र हुई तो साधारण जनता । अपने जन्म से अन्तेष्टी क्रिया तक वही गण्डा वाज के सहारे पालने की पंरपरा व्याघात हुई । इससे अधिक क्षतिग्रस्त्र ज्ञानी, पण्डित, शोधकर्ता तथा नीरव सरल साधारण लोग हुए । किसी ने कहा था कि कभी भारत में ४९०० ताल हुआ करते थे ९२० में संकोचित होकर अब १६ ताल से काम चलता है ।

प्रतीत होता है कि भारतीय मूल संस्कृति लोकधारा थी । इस धारा में कोशलांचल का अवदान कुछ कम नहीं था । प्रामाणिक दृष्टि से रामायण, महाभारत, श्रीमद भागवत आदि पुराणों में कोशल की चर्चा वड़े सम्मान के साथ किया गया है । आगे इस विषय पर आलोचना पुनः करेंगे अब पश्चिमांचल या कोशलंचल के वाद्य यंत्रों के संचयन के ऊपर ध्यान दे तो अच्छा होगा ।

पश्चिम उडिशा मे अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्र प्रचलित है । परन्तु गण्डा बाजा को छोड़ बाकी बाजे आवश्यकता के अनुसार समय सुविधा को देखते हुए व्यवहार होते हैं । मानव जीवन के साथ पारिवारिक, सामाजिक या मनोरंजन के लिए गण्डा बाजा हा आवश्यक है ।

पवित्र भारत भूमि की एक ऐसी संस्कृति है जहाँ विविधता में एकता का सुन्दर समावेश है कई तरह के परिवर्तन के चक्र से गुजर चुके भारत के वाद्य समूह का निर्धारण हमारे पूर्व पुरुष के द्वारा लिपि वद्ध हो चुका है ।

पट्टहि मर्दलाश्चाथ हुडुका कडका घटः

घटसो ढबसो ढक्का कुडुका कुडबा तथा

रुझा डरुको मंडि डकका मण्णडिक्का च चिककुलि

सेल्लुका झल्लरी भाणस्त्र बलि दुंदुभि स्तथा

भेरि निःषाण त्वम्बकौ भेदाः-स्युरबनद् गाः

अर्थात अबनद्ध भेदमान : - पट्टह - (उक्तल संगीत पद्धती)

मर्द्धल, हुडुका, करटा, घट, घडस, ढबस, ढक्का

कुडुक्का, कुडुबा, रुझा, डंवरु, डक्का

मण्डीडक्का, डकुली, सेल्लका, झल्लरी, भाण, त्रिबली

दुन्दुभी, भेरी नीःषाण, डुम्बक ।

वर्तमान के युग में इस नाम से भारत वर्ष में शायद ही कोई वाद्य यन्त्र प्रचलित है । कुछ वाद्य यन्त्र का नाम बदल गया तो और कुछ लुप्त हो गये हैं । संपूर्ण विलुप्त हुआ है यह कहा नहीं जा सकता पर यह निश्चित है कि भारत वर्ष अब अपनी परंपरा को संस्कार के नाम से अत्याधुनिक वैदेशिक परंपरा प्रचलित कर पुरातन वाद्य यन्त्र को मनमुताबक परिवर्तन कर रहा है ।

सुखद विषय तो यह है कि कुछ आदिवासी दलित अंचल में अपने पूर्व पुरुषों की संकृति रक्षा कर अभी भी वही पुरातन बाद्यों से अपना कर्म निर्वाह कर इसे इतिहास के लिए सम्भालकर रखा है । लोकधारा आश्रय से मार्गीधारा की सृष्टि हुई यह तो सर्वमान्य है । यहाँ आधुनिक कल्पना का स्थान ही नहीं । वानराकृत मानव सभ्यता से लेकर अत्याधुनिक सभ्यता में आवर्तन विर्तन चक्रमें घूरते पिसते हुए विकाश का नाम जन्म लिया । परन्तु भारत के हर प्रदेश में कुछ नावि कुछ पारंपारिक वाद्य अभी भी विद्यमान है । मानव के सुख दुख हर्ष उल्लास सभी रसों में इसका विनियोग करते आ रहे हैं ।

कहीं ढोल तो कहीं कहीं ढोल के साथ टिमकि या तासा और सहनाई उसी प्रकार प्रकृति के शब्द जन्मे बाद्यों का संपूर्ण व्यवहार, पंचभूतों से पंच वाद्य का व्यवहार देखने को नहीं मिलता है । परन्तु पश्चिम उडिशा या कोशलाचंल में पूरे पाँच वाद्य ढोल, निषान, तासा, टमिकिड़ि और मुहुरी के साथ साथ, स्याहि रहित और स्याहि सहित अनेक वाद्य यन्त्र प्रचलित होते आ रहे हैं ।

एक निर्धिष्ट भौगोलिक सीमा के अन्दर इतने सारे वाद्यों के व्यवहार का कारण, वाद्ययन्त्र बनाने की शौली, वजाने की विधि यह सब अनुसन्धान के अन्तर्भूक्त होना अनिवार्य है ।

स्वतन्त्र विभागों में विचार करेंगे—

निर्माण पद्धति

ढोल— आवश्यक गोलाई के अनुसार सुखे लकड़ी को काटकर भीतर से पोल किया जाता है जैसे कि दोनो मुख समान बृत्ताकार हों । मृत पशु के चर्म द्वारा वाम मुख लोमश तथा दक्षिण मुख के लोमरहित चर्म द्वारा आच्छादित किया जाता है । दोनों मुख का बाहरी भागों पर बाँस से बने वृत्त लगाये जाते हैं, चर्म रज्जु(बादि) के सहारे आच्छादिन चर्म को बाँस वृत्त के साथ कसकर बांध जाता है । ध्वनि नियंत्रण के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक बंधे हुए चर्मरज्जु में लोहे के छोटे रिंग लगाए जाते हैं । वाम पार्श्व से गंभीरी ध्वनि

निष्कासन के लिए आच्छादन चर्म पर घना तेल का प्रलेप लगाया जाता है। जो एरण्ड तेल, कोयला (अथवा जलाया हुए भुसे के कोयले से) बनाया हुआ होता है। लौकिक बोली में अगेन कहा जाता है। इस भाग के चर्म को धामस कहते हैं। धामस को एक विशेष लकड़ी से बना काठी के सहारे अथवा साम्मर सिंह के सिंग के सहारे बजाया जाता है। दाहिने भाग के चर्म को ताली कहा जाता है। उसपर प्रलेप नहीं दिया जाता। एक अंगुली, चारों अंगुली अथवा हाथ के अग्रभाग के द्वारा ताली से शब्द निकाला जाता है। कभी कभी वाम भाग को बजाई जाने वाले काठी (खड़ा) के सहारे ढोल के मध्यभाग लकड़ी पर बजाकर ध्वनि का अलंकरण किया जाता है। वाम भाग का आच्छादिन बछड़े के चर्म से और दाहिने मुख का आच्छादन बकरे के चर्म से होता है। एक रज्जु के सहारे ढोल को गलेपर डालकर बजाया जाता है।

ऊर्ध्वमुख निसान

कुछ लौह पत्तियों से हाण्डि जैसा एक आकार बनाया जाता है। उसके मुख को भैंसे के चर्म से आच्छादित किया जाता है। मुख के बाहरी भाग में एक लोहे का रिंग होता है जिसके सहारे आच्छादन को कसकर बांधा जाता है। आच्छादन पर तेल का प्रलेप लगाया जाता है। बाजे के निचलेभाग में एक रंध्र होता है। वायुचाप नियंत्रण के लिए उस रंध्र के माध्यम से तैल डाला जाता है।

टिमिकिडि

यह भी एक ऊर्ध्वमुखी वाद्य है। आकार में निसान से बहुत छोटा। मृदुध्वनि उत्पन्नकारी, ढोल के वाम भाग और निसान का सहयोगी वाद्य है। वाद्य के दोनों पार्श्वों में सिंग के आकार के ४-५ फुट लम्बे लौहदण्ड लगे होते हैं। प्रायतः इसे नाच नाच कर बजाते हैं जो सिंहखेल कहलाता है।

मुहरी

यह वाद्य यत्र दोनों हाथों के वृद्धांगुली के सहारे रखकर ऊपर के रन्ध्र पर दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका आवश्यकतानुसार रन्ध्र पर रखकर अनेक स्थूल और सूक्ष्म स्वर सृष्टि किये जाते हैं। यह यन्त्र बाँस या काठ को पुल करके उसमें सात रन्ध्र कर। आगे पित्तल की मुखा और पीछे पित्तल का कल या पिका लगाकर (पिका वृत्ताकार ताँबा) उसके ऊपर ताड़ पत्रसे प्रस्तुत पि.पि या स्वर यन्त्र लगाकर बनाया जाता है।

इस से मालुम होता है कि गण्डाबाजा में व्यवहृत वाद्ययन्त्र समूह एक साथ निर्माण नहीं हुआ है। मानव के विकाशमुखी होनेसे भिन्न भिन्न -क्षेत्र, समय, में संस्कारित करके

एक गोष्ठि, मण्डली बाद्य में परिणत हुआ है ।

काष्ठ(लकड़ी), लोहा, पित्तल, बाँस, ताड़पत्र, सुत, खाल का प्रयोग श्रवणेन्द्रिय में सुनकर हृदयंगम कर के बार-बार चिंतन मनन के रूप में वर्तमान के गण्डाबाजा, ढोल निसान, टिमिकड़ि, तासा और मुहुरी है ।

यह वाद्य यंत्र की कल्पना तथा ध्वनि योजना का मूलउत्स आकाश, जल, पवन, मिट्टी, आग यह पंच-भूत से पैदा प्राकृतिक वैभव को कार्य में लगाने के साथ साथ ध्वनात्सक गुण अन्वेषण करने की योग्यता आदि पंरपरा से आदिवासी, अधिवासी तथा ३६ पाटक जाति प्रर्यन्त पर्यायक्रम में सबको सामिल किया है ।

इतिहास कहता है कि आदिमानव का प्रथम आविस्कार भूमि दुन्दुभि है । यह मिट्टी या पत्थर पर बना गर्त था । जीवन धारण के लिए बहुत मेहनत के बाद जब मनुष्य के हाथ कोई शिकार लग जाता था, तो वह विभोर हो कर अपनी छाति पर हथेलियों से बाजा बजाकर उछलकूद करते हुए तरह तरह की मुख भंगी बनाकर स्वराजी अनेक ध्वनिसृष्टि करता था । माँस भक्षण के बाद चर्म को माटी गर्त का ढक्कन बनाकर उसपर हाथ या छडी से प्रहार करके ध्वनि उत्पन्न करके विभोर हो जाता था । कालान्तर में वह भावप्रकाश कारण के जानने के लिए उत्सुक हुआ । संभवतः यह घटनाएँ प्रागतिहासिक से प्रस्तर युग के मध्य घटित हुआ होगा । विकाश के क्रम में मिट्टी के गर्त का स्थान मिट्टी की हाण्डी ने ले लिया । लौह युग में वाद्ययन्त्र को स्थायी रूप देने के लिए लौह के हाण्डी से निसान और दुन्दुभि बना । बैदिक युग को बाद्यों का स्वर्ण युग कहा जाता है, क्योंकि इस काल में ऋषिमुनियों ने ध्वनि पर संपूर्ण खोज कीया, अपनीखोज को लिखकर ग्रंथ का आकार दिया, जो कालांतर में वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वेद के कथानुसार शब्द ही सृष्टि का प्रारंभ है, शब्द ही ब्रह्म है । ध्वनी के कम्पन के बिना सृष्टि की कल्पना असम्भव है ।

बजाने की प्रक्रिया

ढोल

शब्द के आदि स्वर अ, उ, म (प्रणव) है । उस प्रकार आदि वाद्ययंत्र के रूपों में ढोल सर्वजन स्वीकृत है । अ उ और म-मन्द्र मध्य, और तीव्र स्वर के सूचक है । वैसे ही ढोल का वाम पार्श्व मन्द्र, दक्षीण पार्श्व तीव्र तथा दोनों ध्वनीयों के मिश्रण को मध्य माना जाता है । ढोल में कुछ भी अप्राकृतिक नहीं है, प्राकृतिक वर्जनीय वस्तुओं से बना है ।

लकड़ी और चर्म इसके निर्माण के उपादान हैं। आकाश का प्रतीक होने के कारण ढोल का वैदिक नाम 'निषान' है।

टिमिकिड़ी

भूमि पर प्रहार करने से जिस स्वर का सृजन होता है, इसी के आधार पर मृदुस्वर उत्पन्न करने के लिए टिमिकिडि का निर्माण हुआ। जो कि दुन्दुभि का सूक्ष्म स्वर है। निसान और टिमिकिडि का निर्माण कौशल प्रायतः समान है।

तासा

ढोल के दक्षिण पार्श्व से अंगुली द्वारा उत्पन्न होने वाले ध्वनि को तासा अलंकृत करता है। तासा पर कोई प्रलेप नहीं होता। इसलिए इससे कर्कश ध्वनी उत्पन्न होता है जो अग्नि का प्रतीक है। बैठकर वजाते समय तासा को एक गोलाकार बेंट (पाल से बनी मोटी रस्सी) या जारियल के छिलके से बने अँएरा (अंसरा) पर रख कर बजाया जाता है, तथा चलते समय गलेपर लटकाकर बाँस के दो पतले काठियों द्वारा वादन किया जाता है।

मुहुरी

आदि परंपरा के भालूबाँसुरी का यह संस्कारित रूप है। पीपल के कोमल पत्तों के भीतर वायु प्रवेश करके जिस स्वर को उत्पन्न किया जाता है। मुहुरी उस स्वर की अनुकरण हैं। यह बाँस के नली से बनायी जाती है जिसपर सात रंध्र होते हैं। नली के अग्रभाग में एक पितल की नली लगी है। जिसे शुषी कहती है। उस नली के ऊपर एक गोलाकार मुदरी लगता है। पीतल की नली के ऊपर लगायी हुई ताडपत्र की पिपि मुँह के अन्दर डालकर वायुचाप के प्रयोग से फूँक कर बजायी जाती है। पीतल नली के साहारे मुख द्वारा वायु का चाप देकर, ऊँगलियों को रंध्रों के ऊपर रखकर सुर परिवर्तन किया जाता है। मुहुरी के नीचले भाग पर लगे पीतल का मुखा स्वर को विस्तार करने में महायक होता है। यह मुहुरी अग्नि का प्रतीक माना गया है।

बनने की प्रक्रिया

अविच्छिन्नता सृष्टि का दर्शन है। जड-चेतन एक दुजे के संपुरक है। चौरासी करोड़ योनियों को अतिक्रम करने के बाद जो श्रेष्ठ जीव जन्म लेता है वह मानव कहलाता है। प्रकृति को धारण करने के लिए जितने भी प्राणी हैं उनका परस्पर एकीभूत होना परम आवश्यक है। पंचभूत से उत्पन्न ध्वनि के कम्पन द्वारा प्रकृति और पुरुष का दर्शन स्पष्ट

होता है। आदि मानव के अंतः और बाह्य अनुभवों के आधार पर जिस ध्वनि विज्ञान का प्रारंभ हुआ, कालांतर में आवर्तन और विवर्तन चक्र से संस्कार प्राप्त कर गण्डाबाजा हुआ। इस वाद्य की उत्पत्ति और विकाश के बारे में विचार करने से पहले प्राणियों का एकीभूत होना तथा प्रकृति से उनका सम्बन्ध अविच्छिन्न होने पर विचार करना आवश्यक है।

वाद्य का परिचय एवं निर्माण पद्धति और परिकल्पना

१. पंचवाद्य या गण्डाबाजा

क- ढोल

२. गण्डा ढोल लकड़ी से बनते हैं।

यह ढोल मिट्टी से बनता है। एक निर्दिष्ट समय पर दण्ड यात्रा में प्रयोग होता है। एकक वादन के लिए उपयोगी है -

निषान : - निषान लोहे से बनता है।

चित्र

लोहा का चदर को किला में जोड़कर एक हाण्डी बनाया गया है, एक तरफ बजाने के कारण बुध्नी को हाण्डी का आधे हिस्से से कजरी के साथ पोता जाता है। ढोल में चाट नहीं रहता पर निषान में चाट रहता है। भैस की चमड़ी से निषान करते हैं और शब्द गम्भीर होने के लिये चमड़े के ऊपर और नीचे दोनों तरफ तेल डाला जाता है। ऊपर लेप

देने का तेल और नीचे डाला जाता तेल में अन्तर रखते हैं ।

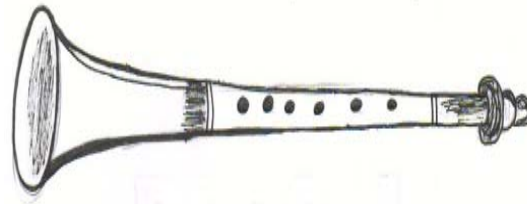
टिमिकिड़ि या टिमकि : निषान से छोटा होता है । तैयारी की प्रणाली एक जैसा है । पर निषान से उच्च स्वर रहता है ।



तासा : मिट्टी की हांडी से तासा बनाते हैं व्यास कम होने के कारण तीव्र सुर निकलता है ढोल की ताली शब्द के साथ मिलता है ।



महुरी-



पंचभूत और गंडा बाजा

उपसंहार: जब जब संस्कार का नाम लिया गया है वहाँ केवल पुरातन को लेकर कुछ परिवर्तन किया गया । मूल आधार को छोड़ कर कोई भी संस्कार जन्म नहीं होता ।

आदिमानव से लेके आदिवासी तक सभी ने इस गण्डा वाजा की ध्वनि को बार बार मन्थन किया होगा नहीं तो पंचभुत की ध्वनि की प्रतिरूपात्मक ध्वनि की शृष्टि करना सम्भव ही नहीं होता । इसलिये प्राचीन सभ्यता को देशज, अपसंस्कारित, दिशाहीन, तथा

मदिरा के नशे में बजाने हेतु उसमें कोई सिद्धान्त मार्ग नहीं है, यह कहना केवल मार्गी संगीत शास्त्र उपासक ऊच्च वर्ग का काम होगा। आदिवासी और केवल सांकेतिक चिह्न के व्यतीत कोई लिपि नहीं थी। केवल मात्र श्रुति ज्ञान को आधार मानकर प्राचीन युग से आज के अत्याधुनिक युग तक अपनी स्थिति प्रमाणित करते आये हैं। भारत का अन्य प्रान्त के अदिवासियों की आदिकला महान है। प्राचीन दक्षिण कोशल या आज की ओडिशा की पश्चिम उडिशा के आदिवासियों की कला है। पंचभूत के अंश विशेष को एक साथ अनुकरण कर ध्वनि को उपासना, समाजिक, अर्थउपार्जन तथा मनोरंजन कार्य में विनियोग करना अपने आप में एक महान गुण है।

पहले भी आलोचना कर चुके हैं। भारत का मूल भारतीय हैं आदिवासी। यह प्रमाण कर चुके हैं।

आदिवासी, वनवासी, होने के कारण प्रकृति से भलिभाँति परिचित थे। श्रुष्टि के समस्त प्रकार जड़ जीव के साथ पले वढ़े, उनके कारण ध्वनि प्रतिध्वनी को परखने निरखने का कार्य किये हैं। प्रकृति की प्रत्येक ध्वनियों का प्रभाव दृष्टि में किस तरह पडता है वह जानते थे। तभी पुराण वर्णित ऋषि मुनी तपस्या के लिए वनवासी अदिवासियों के साथ रहने का सिद्धान्त लेते थे।

आकाश की अनन्त ध्वनि, प्रतिध्वनि बहुलत्व से अल्पत्व, कंपन ध्वनि आदि को केवल मात्र श्रुति के माध्यम से संग्रह कर मस्ती से बनाया गया भूमि दुंदुमी का विकाश कर ढोल की कल्पना की गई थी। वेद प्रणव मन्त्र जैसे तीन स्वर यथा 'अ' नाभी से 'उ' स्वर 'म' स्वर कंठ के ऊपरी भाग से श्रुष्टि होकर 'ओम' हो जाता है। 'अ' नाभी की कल्पना ढोल का वायाँ या धामस 'उ' शब्द का दक्षिण से व 'म' स्वर वायाँ दायाँ के मिलित स्वर से बने विन्दु से ढोल। इसी कारण पुराणों में 'ढोल' को 'पणब' नाम की स्वीकृति दी गयी है।

प्रणव और पणब एक मुद्रा के दो पार्श्व हैं। प्रणव पिण्ड से 'अनाहत' के सहारे और पणव आहात से ब्रह्माण्ड की परिकल्पना। ये दोनों ही क्रिया ध्वनि परिप्रकाश है।

ढोल अदि वाद्य है इस का प्रमाण पुराण से लेकर दार्शनिक कवि तक अपनी अपनी रचनाओं में लिपि कर प्रशस्ती बर्णन कर चुके हैं।

तुलसी दास बालकाण्ड ३४३ में

हने निषान पनब बर बाजे।

भेरी शंखध्वनी हय गय गाजे ।

पश्चिमांचल (उडीशा में) अविभक्त बलाङ्गिर जिले की खलिआपाली में जन्मे महान शून्यवादी दार्शनिक अन्ध कवि भीम भोई 'अक्षर' को ब्रह्म (नाद) मानते हुए लिखे हैं (उडिशा भाषा मे)

ढ' अक्षर होइछी बाजा डोल,
शबदरे भुवन कम्पुछि दलदल ।

अर्थात् 'ढ' अक्षर उच्चारण से जिस प्रकार ध्वनि तरंग जात होता है उसी के साथ तुलना करके 'ढोल' का ध्वनि भूवन में दलदल घन ध्वनी उत्पन्न कर भूवन को कम्पित कर देता है ।

यह ढोल कवसे उद्भावन हुआ यह कहना कठिन है । भारत वर्ष को हर कोने में उसका आदर है मान्यता भी है । आंचलिक परिवेश के अनुशार ढोल की तैयारी रुपरेख तथा ध्वनि विभेद देखा जाता है । पर ढोल सर्वत्र प्रचलित चाहे पश्चिम बंगाल, आसाम, मेघालय मध्यप्रदेश, ओडिशा, बिहार, उत्तर प्रदेश इत्यादि भारत के हर प्रांत में देखने को मिलता है । विश्वास है आदि काल से प्रचलित होने के कारण उससे उत्पन्न ध्वनि मानस पट कोशलांचल ढोल की पूर्ण जानकारी पर ध्यान देंगे ।

पंच भूत से जात समस्त वस्तु को मानव अपनी प्रति रुपाम्तक मानकर सदैव उसकी सुरक्षा तथा विनियोग भलीभाँती जानते थे । वन, पर्वत, झरणा, पशु, पक्षी आदि से ध्वनि गुण आहरण कर उसके प्राति रूप एक वाद्य यन्त्र निर्माण हुआ है । जंगल में पड़े पुराना तथा हलका काष्ठ दुम को काटकर उसके भीतरी भाग को खोल दिआ जाता है जैसे एक वाँस की नली जैसा हो ।

जंगल में मरे पड़े पशुओं की खाल को एक वाँस पत्ते के वृत्ताकार (लौकिक भाषा में मर्ला कहते हैं) के साथ लपेट कर दोनो तरफ का पुडी (छादन) बनाया जाता है और चमडे रस्सी (बद्दी) के जरिये पोथा जाता है । ढोल के बाँधे दाहिने दोनो तरफ का चमड़ा का निर्णय एक चतुरता का परिचय है । वायाँ साधारणत : भैसे की खाल को ज्यादातर भैस की खाल को व्यवहार में लाया जाता है । क्योंकि बायाँ एक जष्टि के सहारे बजाया जाता है । इसमे एक तेलका लेपन लगाने के कारण तथा लोम युक्त होने के कारण वाया से मद्रस्वर या गम्भीर ध्वनि उत्पन्न होता है । तदरूप दाहिने में लोम मुक्त बकरी खाल लगा कर हाथ से बजाया जाता है । उसमें तीब्र स्वर उत्पन्न होते हैं । दोनों ही पार्श्व के ध्वनि

मिश्रण से एक नाद (बिन्दु) जन्म होने के कारण मानव जीवन के हर पहलु मे व्यवहार होता है । अर्थात ध्वनि का सर्वोच्च शोध संगीत मे व्यवहार उपयोग होता है ।

इस तरह ढोल को एक ब्रह्मांड का एक प्रतीक मानते हैं कहावत है -

उत्तर डोलका मुलं ।

दक्षिण डोलका पेटं ॥

पश्चिम डोलका शाखा ।

पूर्व डोलका आँखा ॥

अर्थात ढोल का चतुर्पाश्वर् मूल पेट शाखा, आँख, का वर्णन करते हैं ।

पुनः ढोल के वद्दि में ब्रह्मा, नाद मे पवन, जष्ठी (खड़ा बाड़ी) भीम दोनों पुडी मे विष्णु पुत्र, कड़ा में गुणकी, खड़े होकर वजाने की सुविधा के लिए लगाया जाता है । वह नाग देवता ओर कन्धे से धरे रखने के लिये जो फीता लगता है वह कुर्म देवता के पुत्र स्थापित होते हैं । ढोल का समस्त अवयव में बिभिन्न देवता स्थापित होते हैं ।

श्लोक : स्वयं पुत्र भवे ढोल ब्रह्मा पुत्र त डोरीका ।

पोन पुत्र भवे नादं भीम पुत्र गजा बलं ॥

बिष्णु पुत्र भवे पुडं नाग पुत्रं कुण्डलीका

कुर्म पुत्र कन्दोटिका गुणीपुत्रा कस्मिका

ढोल में दोनो पुडी वान्धे रखने के लिए बार छेद होते हैं । उसी छेद में बदी भर कर बन्धन किया जाता है । प्रत्येक रन्ध्र या छेद में एक एक देवता की कल्पना की है । १-श्रीदेव, २-सत, ३-पासमते, ४-गणेष, ५-रणका, ६-छनका, ७-बेची, गोपी, ९-गोपाल, १०-दुर्गा, ११-सरस्वति, १२- जगत्ती स्थापित होते हैं ।

अभिमत : ढोल मे देवी देवताओ की स्थापन कल्पना हुई है । यह उच्च वर्ग की कल्पना है । अदिवासी सदैव अपने पूर्वजों को ही देवता मानते आये है । जो भी हो आदिवासी जनजाति से अविष्कृत गण्डा बाजा का प्रमुख ढोल में कुछ शास्त्रीय गुण हैं । इसी कारण सर्वत्र इसकी मान्यता है तथा मानव से लेकर देवी देवताओं के कार्ये में विनियोग होना प्रमाणित है । ढोल आकाश का प्रतीक है ।

निषान

चित्र न.

निषान बनने की पूर्वावस्था (एक लोहे की हांडी है)

चित्र न.२ इस तरह एक लोहे के चद्दर से ऐसा आकार देकर उसको जोड़कर एक हण्डी का रूप दिया जाता है। प्रत्येक जोड़े में कुछ लोहे की कीलें ठोक कर बनाया जाता है।

न चित्र न. ३-

चित्र नः५ एक लोह का वृत्ताकार बनाकर

चित्र ना ६- हण्डीका आधा हीस् से लोहे खीले के सहारे लगाता हे।

चित्र ना : ७-मरा हुआ भैसा की खाल को चकी बनाकर हण्डी में उपरी भाग में

एक रीं लगाकर छादन कीया जाता हैं।

चित्र नः- ८ तैयारी पूर्णता के बाद निम्नोक्त आधार धारण करता है।

बजाने के लिये चमड़े का बनाया हुआ

चिमिठा या चमड़े का बेडीं।

भारतीय संगीत में उपरोक्त वाद्य यंत्रों का अवदान अनुसंधान सापेक्ष है। ध्वनि तत्व का सर्वोच्च अनुसंधान ही संगीत है। देशी हो या मार्गी दोनो ही प्रकृति से जन्म। केवल मात्र लिपि के माध्यम से संरक्षण करने का नाम शास्त्रीय और जिसका स्वतः श्रुत भाव से विनियोग किया गया वह है देशी। देशी और मार्गी होने में ही मन चेतन, प्रकृति को ध्वनि के माध्यम से संतुलित रखना और मनोरंजन में विनियोग कर समाज मंगल के लिए साधन योग्य है।

संगीत : कुछ शब्द या ध्वनि का खेल है। ध्वनि श्रृंखलित कर परिवेषण के कारण शरीर में रसोभाव जाग्रत हो जाता है। गीत, वाद्य, नृत्य यह त्रीधारा निःसंकोच प्रकाशित होती है।

आर्यों के आगमन पश्चात लिपि का जन्म हुआ। उससे पहले भारत की लोक धारा के अंतर्गत लोक कला मर्यादापूर्ण संपदा थी। उसी से बाहिरागत आकृष्ट होकर भारत में प्रवेश किये। उस समय की भौगलिक स्थिति कैसी थी, भलि भाति सब जानते हैं।

पंच प्रकृति के साथ वानराकृति मानव से आर्यों के आगमन तक भारत की पश्चिम ओडिशा तथा कोशलांचल भारत का एकअविच्छेद्य अंग बना हुआ था। यह अंचल प्राकृतिक परिवेश द्वारा आदिवासी दलित अंचल कहा गया है। किंतु सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा यह अंचल अधिक वित्तशाली है। पंचभूत के पांचों ध्वनियों का आहरण कोई सामान्य कार्य नहीं। आदिवासियों दलितों का मिश्रित साधन है 'गंडा बजा'। इस 'गंडा बजा' में शास्त्रीय गुण हैं या नही यह परखना है।

गंडा बाजा की विशेषता :

गंडा बाजा में मध्यस्तता करता निषान भारतीय संगीत परंपरा के आदि उद्भावन भूमिदुंधुभि का प्रतिरूप है । प्रकृति से जात ध्वनि गुणों का मानवीय शरीर में प्रभाव, उसको अनुकरण कर ध्वनि के अल्पत्व, बहुलत्व, तरंग, प्रतिध्वनि इत्यादि को प्रकृति के मूल पाँच ध्वनियों को पाँच वाद्यों के सहारे संभाले रखना ही गंडा बाजा की विशेषता है ।

अतीत काल के साधन अनुसार वाद्ययंत्र निर्माण में भारी होना और उससे ध्वनि का विभिन्न स्वर निकालना कठिन कार्य था । हर परिस्थिति में खुद को संभाले रखने जंगल का गेंडा ही समर्थ मानते हैं । तदरूप आदिवासियों के साथ वन पर्वतादि प्राकृतिक परिवेश में खुद टिके रहने के कारण इन कलाकारों को गंडा और भारी वाद्य होने के कारण उस पंच वाद्य को 'गंडा बाजा' कहा गया होगा ।

शास्त्रों के निर्माण समय में भारत में दो प्रकार के संगीत की मान्यता है । एक शास्त्रीय या मार्गी दुसरा देशी या देशज । किंतु संगीत इतिहास पर दृष्टि देने से प्रतीत होता है । शास्त्रीय केवल शाम पद्धति है, जो कि केवल मात्र यज्ञानुष्ठानों में प्रयोग, होता है परन्तु देशी जन मानस में मनोरंजन प्रदान करने हेतु व्यवहृत होता है, जो कि गंधर्व कला के रूप में प्रसिद्ध है ।

वादक

विशेषज्ञ वाद्यकार

गण्डा संप्रदाय के लोग ही इन वाद्यों के बादक हैं जो पाँच वाद्यों के अलग अलग विशेषज्ञ होते हैं। प्रस्तरयुग से आरंभ होकर ऐतिहासिक युग में इनके पूर्ण विकसित होना माना जाता है। इन वाद्यों का वादन करना, ध्वनियों के भेद को समझना, अपने कल्पनानुसार प्रकार भेद से ध्वनि उत्पन्न करके श्रोताओं के कर्ण के माध्यम से उनके तन, मन को स्पर्श करना अपनी विशेषता को साबित करना कोई साधारण बात नहीं है। इनकी वादन साधना के लिए अन्तर्शक्ति, मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति तथा चेतन शक्ति की जरूरत होती है। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन तथा शुद्ध चेतन के लिए कठिन परिश्रम की जरूरत होती है। इसके अलावा वाद्य यन्त्र के भार को बहन करने के लिए पशुतुल्य शक्त शरीर (गेण्डा), एकाग्रता और निर्विकारित्व की आवश्यकता होने के कारण भी लोकमुख से उपमा सूचक गण्डा कहलाए जाना अनुमेय है। दूसरे अर्थ में पुराणों में वर्णित गंधर्व शब्द से भी धीरे धीरे अपभ्रंश होकर गण्डा शब्द होना माना जा सकता है। गंधर्व अथवा गण्डा जाति की शिरा-प्रशिरा में प्रवाहित रक्त में प्रकृति की ध्वनिओं का अनुभव है। ये सरल प्राणियों ने किसी मान-सम्मान की अपेक्षा किए बिना प्रकृति की मूल ध्वनिओं का अनुकरण करके तरह तरह के स्वतंत्र छन्दों का सृजन किया है और उसे जनसमूह के उद्येश्य में समर्पित कर दिया है। यही है वह जाति, जिनकी प्रतिभा और आवश्यकता को कोई समझे या न समझे, कोशलांचल के आबाल-वृद्ध-बनिता ने उन्हें पहचानने में कोई कसर नहीं छोड़ी। प्रकृति के गंधर्व कला का सिद्ध कलाकार गण्डा एवं उसके द्वारा प्रचलित, संरक्षित संचित एवं प्रसारित पाँच वाद्य ही गंडाबाजा नाम को सार्थक करते हैं।

क्यों बजाता है ?

क) कंपन बिना सृष्टि संभव नहीं है। इस सूत्र को समझकर यह जनसमूदाय दारिद्रता में रहते हुए; गाँव के बाहर रहकर असम्मान और उपेक्षित जीवन जीते; दलित, पतित,

अनार्य आदि अपशब्दों को सहते हुए, प्रकृति के साथ संस्कार होकर एकांत में ध्वनि के माध्यम से कंपन सृष्टि करता आ रहा है।

ख) कई युगों से मनुष्य अपने अनुभवगम्य शक्ति की किसी न किसी देवी या देवता के रूप में उपासना करता आ रहा है। यही परंपरा जन-जातियों में भी प्रचलित है। वे अपने ईष्ट को अपने कल्पित रूप-रेख के अनुसार, अपनी स्थिति और ज्ञान के आधार पर स्वतंत्र छन्दयुक्त ताल (पार) बजाकर श्रद्धा और विश्वास जाग्रत करते हैं।

ग) गाँव या ग्रामवासियों के उत्सवादि अवसर पर अपने कष्ट और अपमान को भूलकर जनसमूह को आनन्दित करने के लिए वादन द्वारा आनन्द लेते हैं।

२६. घ) जाति प्रथा के अनुसार विशेष अनुष्ठानों पर विशेष छन्द बजाकर जाति की महानता को प्रतिपादित करते हैं। रीति-रिवाज के अनुसार अनुष्ठानों के पालन में उत्साह भर देने में सुख पाता है।

ङ) एक मुठ्ठी चावल लिए घर-घर घूमनेवाला गंडाबजा कलाकार राजकार्य, सामाजिक त्यौहार, उत्सव, विवाह तथा युद्धाभ्यास आदि अवसरों पर वीर रसयुक्त ताल बजाकर शोभायात्रा की शोभा बढ़ाकर आनन्दित होता है। क्वचित् वादन को अर्थेपार्जन का माध्यम बनाता है।

कब बजाता है ?

क) स्वयम् को आनन्दित करने के लिए जब जी चाहा बजाता है।

ख) पूजा, उपासना, व्रत, त्यौहार, पर्व आदि अवसरों पर मंगल सूचक वाद्य बजाता है।

ग) जन्म से लेकर मृत्यु तक, प्रथा-परम्परा के अनुसार पारिवारिक और सामूहिक उत्सवों में।

घ) विवाह उत्सवपर (वर का रवागत, बारात अथवा कन्या की विदाई)।

ङ) युद्ध कौशल शिक्षा, अभ्यास, खेल प्रतियोगिता तथा अखाड़ों में जोश और उत्साह भरने के लिए।

च) गाँव के हर अच्छे-बुरे, सुख-दुख, रोग-व्याधि, जानवरों से सुरक्षा, कृषिकर्म,

सतर्कता, सूचना प्रदान आदि कार्यों में भी अलग अलग प्रकार के वादन करता है।

छ) लोगों में आध्यात्मिक भाव, भक्ति जागरण के लिए।

ज) व्यायाम आदि में प्रेरणा तथा लय बनाए रखने के लिए बजाता है।

क्या क्या बजाता है ?

इस विषय पर चर्चा करके किसी पूर्णांग सिद्धान्त पर पहुँचना असंभव है। पुराण वर्णित दक्षिण कोशल जो की वर्तमान का पश्चिम ओड़िशा में छत्तीशगढ़ और झारखण्ड के कुछ हिस्से हैं, जहाँ के जनजाति क्षेत्र में रहनेवाले गण्डा समाज अपने अपने ईष्टदेव, सामाजिक प्रथा और पर्वों में अपने परिवेश के अनुसार अलग अलग छन्दों में बादन करते हैं। इनका बादनकला इतना विस्तृत और व्यापक है कि उनका संकलन करना असंभव सा है। विषय निर्धारण के लिए केवल पश्चिम ओड़िशा के परम्परागत पर्व उत्सव में बजाए जाने वाले वाद्य-छन्दों का संग्रह करने का प्रयास मात्र है।

२६. पंचवाद्यों के माध्यम से कितना स्वर, कितना छन्द और कितना ताल का सृजन होता है उसका कोई हिसाब नहीं। वाद्यों की पाँच संख्या के बारे में वाद्य विशारद, वरिष्ठ कलाकारों और आधुनिक मंचकलाकारों के मत संग्रह करने से जो सारतत्व उद्भासित होता है, वह यह है कि गण्डाबाजा का आविष्कार और आरंभ कब से है इस संप्रदाय के लोग भी नहीं बता पाते। उनका कहना है कि उनके पूर्व पुरुष पंचमहाभूत के शरीर की तुलना प्रकृति के साथ पीढ़ियों से करते आ रहे हैं, और उसे हम भी निभा रहे हैं। संख्या पाँच की विशेषता का उल्लेख इस प्रकार भी किया जाता है जैसे:— पंचमन, पंचप्राण, पंचकोष, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंचदेव, पंच उपचार आदि। उनका कहना ऐसा भी है कि पंचवाद्य को वे केवल वाद्य मात्र नहीं मानते, उनके विचार में ये वाद्य उनके माता, पिता, भ्राता, भग्नि और मित्र हैं। बापा (पिता) माँ (माता) शब्द का गूढ़ अर्थ है— वा (बा) से वायु, पा से पानी, मा से माटी, आ से आकाश ओ से ओजस आदि। इन पाँच तत्वों से पाँच ध्वनिओं का आविष्कार हुआ, जिसके आधार पर पंचवाद्य बना जो कि पाँच मन, पंचप्राण, पंच भूत, पंच इन्द्रिय, पंचम वेद तथा पंचोपचार के साथ पूर्णरूप से

सम्बन्धित है। पश्चिम ओड़िशा के त्यौहारों में व्यवहृत वाद्यों का संग्रह ही हमारा उद्येश्य है।

पूजा:

अधिष्ठान तथा कर्त्ता, करणम् च पृथग् विद्यम

विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् (गी १८/१४)

२८. (कर्म सिद्धि के लिए पाँच हेतु बताए जाते हैं- अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा और दैव।)

पूजा आत्मा की पुकार है। ईश्वर के प्रति कृतज्ञ, प्रेम, श्रद्धा तथा समर्पण भाव। ईश्वर की कृपा का अनुभव होने से मनुष्य उनके प्रति हृदय का कृतज्ञ भाव प्रकट करता है। आधुनिक युग में पूजा कहीं आत्म प्रचार और प्रदर्शन का माध्यम बन गया है, तो कहीं अनिच्छित उपचार मात्र रह गया है। हमारे परम्परा, व्रत अनुष्ठान कुछ ऐसे हैं कि साधारण लोग उच्च जातियों के शोषण से अछूते नहीं रहते। उनका देवता लकड़ी या पत्थर का एक टुकड़ा होता है, जो कि गाँव के अंतिम छोर पर, सड़क के किनारे नदि के तट पर, पहाड़ी के ऊपर अथवा गुफा के भीतर स्थित होता है। वे प्रकृति को अथवा उनके पूर्वजों को भी देवता के रूप में मानते हैं। आदिवासियों के देवता भीमा (प्रकृति और डुमा (पूर्वज) हैं। उनका पूजा का सामान फूल, फल, पत्र दुर्वा आदि हैं। क्योंकि उनका शरीर उनके पूर्वजों के स्वत से बना है, इसलिए पूर्वजों को अपने रक्त द्वारा उनके ऋण से मुक्त होने को सर्वश्रेष्ठ उपासना मानते हैं। (आधुनिक समाज को यह विचार पता नहीं कहाँ तक ग्रहणीय है। अंधविश्वास का आरोप लगे यह आदिवासी यह सोचकर संतुष्ट होते हैं कि आधुनिक मनुष्य जो कि होटल और बाजार से खरीदे हुए सामान से पूजा करते हैं अन्ततः उनसे वे श्रेष्ठ हैं। क्योंकि अपने देवता को वे शुद्ध सामग्रियाँ प्रदान करते हैं।

पश्चिम ओडिशा व कोशलांचल परिसीमा :

तो यह बाजा का नाम गंडा बजा क्यों ? उनमें पश्चिम ओडिशा मे गण्डा जात उनमे से एक जात है । कहीं कहीं पाण- या डम व डम्ब कहते है । प्रायतः ओडिशा के पूर्वांचल में पाण जात कहार जाति है पर पश्चिम ओडिशा मे उनको दो ही नामसे जानागया है ।

१. गण्डा

२. डम् व डम्ब

उनके नाम से ही यह पंचवाद्य जुड़ा है । जैसे कि गंडा बजा या डम् बजा सर्वत्र बिदित ।

पहेले गंडा नामकरण क्यों ? और कबसे ? इस बारे में जानना ही होगा क्यों कि आज के आधुनिक युग में वह बाजा गंडा व डम्ब के बगैर उच्च कुल मे भी बजाने लगे है । लेकिन गंडा बजा व डम्ब बाजा का नाम हटाकर पंचवाद्य या दुलदुलि नामकरण कर दिया गया है । जो कि यह सरासर अन्याय माना गया है ।

बाजा के बिषय पर पहले आलोचना हुई है लेकिन गंडा जात के बारे में अभी विचार करेंगे ।

दूसरी जातियों की तुलना में गंडा जाति ओडिशा में अधिक है बिशेषतः पश्चिम ओडिशा मे सर्वाधिक है । यह जात तफसिल भुक्त जाति का प्रधान अंश है । सुंदरगड़, संबलपुर, बलांगिर, कालाहांडि व फुलवाणि मे बड़े पैमाने से बसे है । ओडिशा का ८६ शतकड़ा बलांगिर और संबलपुर में रहते है । कठिन परिश्रमी होने के कारण ज्यादातर सहरी, शिल्पांचल मे उनको बिशेष रुप से पाया जाता है । रिक्सा पुलर, शिल्प श्रमिक, माँसन, लकडी के के कारीगर, गृह निर्माण श्रमिक, कृषि श्रमिक, सूक्ष्म व्यवसायी और संगीतकार वगेरह ग्रामांचल में उनको दलित, पतित, अस्पृश्य जात कहते थे । पर आजकल यह जाति धीरे धीरे सुधरने लगी है, फिर भी वे अलग जगह

पर निवास करते हैं। उसको गंडाबजा कहा जाता है व गंडा बस्ति के नाम से वह जगह जानी जाती है। अभी भी सहरों को छोड़कर गाँवों में सर्वसाधारण समाज में वसना मना है या यह लोग नहीं चाहते होंगे।

अभी भी ग्रामांचल में जात पात उच्च-नीच का भेदभाव है। उच्च वर्ग के लोग गंडा जात को एक निम्न श्रेणी मानते आये हैं। मरे हुए पशुपक्षी के सत्कार करने के लिये उनको बुलाया जाता है। किन्तु गाँवों का उच्च वर्ग रात को आराम से सोता है। लेकिन यह गंडा वर्ग रखवाले के रूप में चौकिदारी करते आये हुए है। प्रायतः गंडा जात की जमीन जायदात न होने के कारण कृषि श्रमिक या हर जात के विवाह या गावों के महात्सवों में संगीतकार के रूप में यह पंचवाद्य बजाकर अपना गुजारा निकालते है। गंडाजति कपड़े के हस्तशिल्प में हिर थी।

गंडा जात को विशेषतः १. ओडिआ गंडा, २. लरिआ गंडा, ३. कन्धरिआ गंडा, ४. कवरिआ गंडा में परिचित किया जाता है। भाषा बोली, आचरण कर्म जीवन शैली के आधार चार भागों में विभक्त किया गया है।

उनकी आर्थिक स्थिति, रहन सहन, आदि ओडिशा भुवनेश्वर स्थित आदिवासी हरिजन गबेषणा तथा तालिम केन्द्र द्वारा प्रकाशित □- दि गंडा - पुस्तक में विशेष विवरण है।

विषयानुसार बाजा का नाम गंडा बजा होने के हेतु एक निर्धारित जात को गंडा का नामकरण क्यों किया गया और बाजा के साथ उनके जात का नाम क्यों संलग्न है। इस विषय पर ध्यान देने से तथा उन्हीं लोगों से पूछताछ करने से पता चला है कि कर्मठ जीवन होने के कारण उस जात का हर मानव का सारीरिक गठन जंगल में रहते □-गंडा- का जैसा है। सारीरिक गठन, कर्मठ के साथ साथ उस जमाने में साफ सुथरा नहीं होने से उनका नाम गंडा (पशु) के साथ तुलना की गयी होगी। द्वितीयतः जीवनशैली को भी-गंडा- कहा जाता था। पर सामाजिक प्रथा या जीवन धारण

प्रणाली जो भी हो पर वे गन्धर्व थे । हो सकता है गन्धर्व से अपभ्रंश होकर गंडा हुआ होगा । गंडा जात का मूल मानदंड संगीत ही है ।

पंच बाद्य शून्य से ब्रह्म की ओर

परम श्रद्धा सम्मान के साथ विविधताओं के रहते हुए भी मानव जाति का मंगल साधन करने के लिए शृष्टि तत्व में अपनी सहयोग धारा को बनाए रखने वाली भारतीय अदि परंपरागत संगीत प्रथा को नमन करते हैं ।

इस विषय पर पहले दो पर्ययों में अलोचना कर चुके हैं । परंतु, यह निर्धारित विषय इतना गहन है कि जितनी गहराई में जाते उतना ही अज्ञात प्रतीत होता जाता है । बार बार इस विषय से संपर्कित वयोवृद्ध अनुभवी कलाकारों के साथ संपर्क करके उनके श्रीमुख से कई तथ्य प्राप्त हुए । उन तथ्यों को आधार बनाकर कुछ तत्थ्या व्यवहारिक कलाकारों से भी संग्रह करने की कोशिश की गई । कुछ पूर्व प्राप्त तथ्य तो हस्तगत थे, पर कुछ नूतन भी प्रतीत हुए । आश्चर्य तो इस बात का है कि एक ओर जहाँ शिष्ट धारा में इतने सारें छंदों की संभावना क्षीण प्रतीत होती है, वहीं दूसरी ओर निर्धन दलित अष्पूश्य आदिवासी मनीषियों में उस छंद विद्या का धरोहर गच्छित है ।

कहना उचित होगा कि प्रथम और द्वितीय पर्याय में संगृहित तथ्यों को पुनः परिवर्तित और संशोधित करते हुए उपस्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है ।

जिस वाद्य के बारे में खोज जारी है उसका नाम है 'गंडा बजा' । पश्चिम ओडिशा कोशलांचल, आदिवासी तथा गंडा जाति बहुल अंचल है । वर्तमान भी इस वाजे को गंडा जाति का कौलिक तथा पारंपरिक वाध्य के रूप में पूर्वजों से उत्तरपुरुष तक बजाते आ रहे हैं ।

प्रत्येक उद्भावन का बीज खुद के सामर्थ्य और सांस्कृतिक भित्तिभूमि से जन्म लेता है । जैसे वस्तुवादी दर्शन से वस्तुवादी भाषा और वस्तुवादी संख्या, अध्यात्म दर्शन से आध्यात्मिक भाषा और आध्यात्मिक संख्या का जन्म हुआ है । इस विषय पर द्विमत का अवकाश नहीं है ।

आदिवासी मानव के अंदर जब मानवीय चेतना बढ़ने लगी तब उसने शून्य को स्वीकारा, शून्य में शून्य को ढूँढ़ने लगा है । मानव की मानसिक चेतना स्तर को जिसने सर्वप्रथम आक्रांत किया वह है वेस्तु दूश्यमान जगत । क्षिति, आप, तेज, मरुत, और व्योम इन्हीं पंच महाभूतों को केन्द्र करते हुए वह अपने जीवन धारण व निर्वहन की शैली, वैषयिक ज्ञानार्जन, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था, मनोरंजन मार्ग शृष्टि करने में सक्षम हुआ है । इसी के आधार पर उसने एक वस्तुनीष्ठ संस्कृति की शृष्टि की है जो कि परम सत्ता

के सगुणी ब्रह्म व भौतिक जगत के तत्व के ऊपर पर्यवेसित है। उसी धारा को पार्थिव संस्कृति कहा जा सकता है।

वैदिक परंपराओं में 'शब्द' के व्यतीत और कुछ नहीं है। इस अनुसंधान को सर्वश्रेष्ठ अनुसंधान की स्वीकृति देते हुए धोषित किया गया कि 'एक ब्रह्म द्वितीय नास्ती।' एक पूर्ण (महाशून्य व निर्गुण ब्रह्म) से पूर्ण भौतिक जगत सगुण ब्रह्म है।

पूर्ण से पूर्ण का जन्म ही पूर्ण है। (शून्य से जन्म भौतिक जगत) निर्गुण ब्रह्म से सगुण ब्रह्म। इसीलिए पूर्ण (शून्य) से व निर्गुण ब्रह्म से पूर्णत्व भौतिक जगत को छोड़ जो कुछ बचा वह भी पूर्ण है।

श्लोक - जीव ब्रह्म एव न अपरः

अर्थ - ब्रह्म से जीवात्म भिन्न नहीं है।

जीव जब जन्म लेता है तब रोता है, यदि न रोता तो जीवन न होने का संदेह होता है। उसी प्रकार जीव के अंतिम समय शरीर से सर्वप्रथम ध्वनि क्षीण होती है, तथा जीने की संभावना क्षीण हो जाती है। अर्थात् जीने मरने का माध्यम वही शब्द है। एवं शून्य है।

जितने युगों का चिंतन किया जाए, जैसे - वैदिक युग, संकरायुग, जैन युग, मध्य युग आधुनिक से अत्याधुनिक युग तक भारत में बहु भिन्नता होने पर भी एक बलिष्ठ शून्य केन्द्रीक सांस्कृतिक चिंताधारा निश्चिन्न प्रभावित होता आ रहा है।

इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में शून्यता की प्रशस्ती स्वना भ्रूपूर मरुर में है।

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तिनी भुवने से हरि,

मेध महाशून्य से निराकार आबरि। (ओडिआ)

सहस्र शिर्श पुरुषः सहस्राक्ष सहत्रपाद

सभूमि सर्वत : **स्पृत्त्य** तिष्ठ दशांगुलम्।

अर्थ- पुरुष सहस्र शिर, नेत्र, पाँव युक्त है। उसने भूमि को सभी दिशाओं में स्पर्श कर उससे मात्र दश अँगल अधिकार किया है।

शून्य और पूर्ण को सहस्राधिक जीवों को सभी दिशाओं से स्पर्श कर मात्र दश अँगल अतिक्रम किये हैं। अर्थात् शून्य और पूर्ण यह दोनो शब्द एक विशद तत्व है।

पश्चिमांचल और कोशलांचल का एक आदिवासी दार्शनिक अलेख महिमा धर्म के उद्गाता संत भीम भोई शून्य के बारे में लिखते हैं -

शुन्य शुन्य महाशुन्य अलेख पुरुष

ब्रह्म निरुपण गीत कर मोते दृश्य । (ओडिआ)

अर्थात् महाशुन्य की महिमा लिखना असंभव है । इसलिए अलेख शब्द उच्चारण करते हैं और पुरुष की मान्यता देते हुए शुन्य ब्रह्मज्ञान पाने की भीक्षा करते हैं ।

अन्य एक ओडिआ कवि अच्युतानंद कहते हैं । -

अणाकार महाशुन्य शुन्य मध्ये निरामय,

निरामय मध्ये ज्योति तत् ज्योति भगवानय : । (ओडिआ)

यहाँ भी महाशुन्य का कोई आकार नहीं है, पर निरामय शांति है । पुनः निरामय ज्योति विद्यमान है । और यह ज्योति ही भगवान है ।

सुन्य-संहीता के अनुसार -

भला पचारिलु गुपत सन्धि

शुन्य पुरुष शुन्य परे बन्दी ।

शुन्य पुरुष उदासरे रहे ।

शुन्य पुरुष सबु माया बहे ॥ (ओडिआ)

अर्थात् - गुप्त विद्या (बात) यह है कि शुन्य पुरुष शुन्य में बन्दी है । वह शुन्य पुरुष उदास रहता है । परंतु वही शुन्य पुरुष संसार के सभी प्रकार माया को वहन करता है । भीम भोई पुनः कहते हैं -

महाशुन्य शुन्यदेही निर्गुण शरीर,

एकाक्षर न वसई बसे अणाक्षर ।

अणक्षर अणमात्रा क्षण निशब्द,

शवदर भेद काहीं ब्रह्म निजपद ॥

महाशुन्य, शुन्यदेही, गुणहीन शरीर का किसी भी एक अक्षर की शुन्यता में स्थान नहीं है, परंतु निशब्द का अर्थ 'शुन्यता का शब्द अनुभव' होता है ।

शुन्य की महिमा भी शुन्य है । इसलिए शुन्य महिमा ही धर्म है । महिमा को जानने के लिए शुन्य तक पहुँचने के लिये 'स्थितप्रज्ञ' रहना होगा । जगन्नाथ दास के ओडिआ भागवत में पुरुष के बारे में लिखा है - 'स्वभावे रूप नाहीं जा, महा महिमा निर्बिकार' अर्थ : - स्वभाव में जिसका कोई रूप नहीं है, उसको भला कौन प्रत्यक्ष देख सकता है ।

पुन : जगन्नाथ जी कहते हैं : -

शुण्णबा अर्थे नाना शुण्ण

निर्मले प्रकाशिला कर्ण ।

शुण्णता को कई प्रकार से सुनने के लिये निर्मल कर्ण ही प्रकाश का माध्यम है ।

इस विषय में कई बातें सुनने को मिलता पर निर्मल कर्ण ही इसकी सत्यता प्रतिपादित कर सकता है ।

आभिमत – प्रायत : यह शुण्ण को भेद करने व गमन करने के लिये मानव जाति असमर्थ है । ज्ञान – विज्ञान को पाथेय कर आदि युग से मानव, शुण्णता का भेद जानने का प्रयास करता आ रहा है, परंतु उसे विशेष सफलता नहीं मिली । कारण शुण्ण तो शुण्ण ही है, शुण्ण को अनुभव करने के लिये शुण्ण से उत्पन्न शब्द ही आधार है । इसे मानव जाति का आदि पुरुष अनुभव कर चुके हैं ।

शब्द –ओडिआ भागवत –

शब्द स्पर्श रूप तार, प्रचण्ड तेज महा घोर ।

शब्द मय ब्रह्म पथ, जे मार्गे जीब आत जात ॥

अर्थ : – शब्द के स्पर्श से ही उसके रूप के, प्रचण्ड तेज आलोक तथा महाघोर (प्रचण्ड) होने का आभास होता है ।

यह शब्दमय ब्रह्म पथ है, जिस पथ पर जीव का आना जाना होता है ।

ठाकुर अनुकुलचन्द्र के समाधिस्थ अवस्था में, उनके श्रीमुख से जो बाणी निकली, उससे लोगों ने 'पुण्य पोथी' के नाम से एक संगृहित ग्रन्थ तैयार किया । पहले दिन

उन्होंने कहा – Sound is The Expression of life with out Sound every Thing is life less (63)

दुसरे दिन उन्होने कहा –I was The Sound, Sound is my Creation: There fore your are created by me. only Sound is your Spirit.

If you get Sound every wehere -(19) P.P

चौथे दिन कहा – Sound of your call most reach me. beause i am Sound.

जगन्नाथ दास कृत ओडिआ

शब्द पुण्ण मात्रासंके ।

केबा प्रकाशे अन्तरिक्षे ॥

शब्द को मात्रा में रुपान्तरित करना, अन्तरिक्ष को प्रकाशित करना किसी के वस की

वात नहीं है। व्यास मुनि ने महाभारत में कहा है।

व्यास मुनि महाभारत में कहते हैं :-

तत्त्व ब्रह्मणि देदितव्यम् शब्द ब्रह्म परंचयत

शब्द ब्रह्मणि निस्पात : परम ब्रह्माधि गच्छति ॥

इसी तरह शून्य से शब्द और शब्द ही शून्य है। शून्य और शब्द की प्रसस्ति विश्वभर में विख्यात है।

शृष्टि तत्व में शून्य

शृष्टि शून्य शब्द ही कौतुहलपूर्ण है। मानव के मानसिक स्तर में गहरा प्रभाव पडा है। कई प्रश्नों का समाधान, मन्थन, अनुसन्धान बारम्बार किया गया है। लेकिन कुछ क्षण के लिए मानसिक स्तर में किंचित आलोक का संधान पाकर आनंदित हुए हैं। पर समय समय पर शून्य की तर्जमा ही शून्य में परिणत हुआ है।

शृष्टि पर से जितने भैतिक विषय जैसे - साहित्य, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि सभी के अन्दर शून्य विद्यमान है। मानस पटल में एक चक्रव्युह की तरह धूमता रहता है। यह क्रिया अनन्त काल से चला आ रहा है। कभी 'विन्दु' कभी शब्द तो कभी शून्य के नाम से यह पूजित है। तो कव शून्य के नाम से महाशून्य। मानव जाति कभी भी हार स्वीकार करने वाला प्राणी नहीं है। शून्य से आरम्भ कर शून्य तक दौड़ने का प्रयास अनन्त काल से जारी है। अनुसन्धान से लेकर निर्यास तक चेष्टा करते रहने का दृष्टीत का अभाव नहीं है।

पृथ्वी शून्य, ध्वनि शून्य, ब्रह्म शून्य, जीव ईश्वर की सत्ता भी शून्य है। पंच भूत की मान्यता भी शून्य माना गया है। अतः शून्य ही एक, एक अनेक भी शून्य है। अतः नाद तत्व को समझने से पहले शून्य की उत्पत्ति, व्यवहारिक गुण, करण आदि का शोध आवश्यक है।

'०' शून्य को अक्षर की दृष्टि से 'ट' या 'ठ' समझा जाता है, इसी 'ठ' को पाने के लिए जिस तरह कठोर साधना आवश्यक उसी तरह वह क्रिया शून्य का अनुध्यान पठन है।

शून्य का इतिहास भारतीय दर्शन और संस्कृति का इतिहास तो है ही। शंख्या की दृष्टि से देखा जाए तो शून्य का गुरुत्व अधिक है। शून्य को छोड़कर कोई भी गणना शास्त्र आगे नहीं बढ़ सकता।

वस्तुमय संसार होने के कारण उसके आकलन के लिये संख्या की आवश्यकता

अनिवार्य है, परन्तु वस्तु के न होने पर आकलन करने की जरूरत ही नहीं होती। यदि हम अन्य किसी दुनियाँ की कल्पना करें तो वह वस्तु नहीं केवल शून्यता ही पर्जाप्त मात्रा में है। अतः उसी भिन्न दुनिया से शून्य का आविर्भाव। वह किसी प्रकार वस्तुवादी चिंता की संख्या नहीं है।

शून्यता, का तात्त्विक विशेषण वस्तुवादी अनुभव जैसा एक साधारण अनुभव नहीं है।

शून्यता का जन्म होने के कारण इसी को आध्यात्मिक व नैसर्गिक संख्या कहा गया है।

आभिमत :

शून्य और शब्द यही संसार का सारतत्त्व होने के कारण को समझने, समझाने के लिए ही वेद, वेदान्त, उपनिषद्, आव्याकरण, अष्टादश पुराण लिखने की आवश्यकता हुई। कभी आकार तो कभी निराकार रूप को भगवान, श्रष्टा, कर्ता, सर्व शक्तिमान, इच्छामय, माना गया। पूजन किया गया, सम्मान दिया गया। यह गूढ तत्त्व केवल समाज ही नहीं, अपितु जीव और उस जगत की रक्षा के लिए अत्यावश्यक है। पारायण, सतसंग आदि का आयोजन चलता आ रहा हैं। सर्वोपरि इस गूढतत्त्व के चिंतन को सत्-चित्-आनन्द कहा गया है। यह शून्य और शब्द संसार की शृष्टि का मूल कारण है।

शृष्टि तत्व :

औडिआ भागवत में श्री जगन्नाथ दास ने लिखा अबनी उदक अनल, पवन आकाश मण्डल। जे पंचभूतो कलेबेर बिष्णुर भोजन मंदिर।

केवल औडिआ कवि जगन्नाथ रचित भागवत में कहा गया है, ऐसा नहीं है। भारत का दर्शन ही – शून्य से शब्द और शब्द से पंचभूत को प्रमाणित करता है।

शब्द से जन्मे पंचभूत में शब्द का होना अनिवार्य है। इसे जानने के लिए आवर्तन-विवर्तन चक्र में घुमते हुए आदि से आज तक शोध कार्य होता रहा। आदि मानव से आदिवासी, अधिवासी, छत्तीसपाटक (विभिन्न मनुष्य जाति) अपने पूर्वज तथा पंचभूत को देवता मानते हुए अपना जीवन निर्वाह किये। दूसरी ओर आयो ने जो पिण्ड में नहीं तथा ब्रह्माण्ड में भी नहीं है – यह सिद्धांत लेते हुए पिण्ड शब्द को 'आनाहत' ब्रह्माण्ड अर्थात् पंचभूत को आहत शब्द स्वीकार करते आये। इसी शब्द को नादब्रह्म के नाम से पूजने लगे।

नाट्य मनोरमा :

श्लोक – आकाशादिन मरुज्जातो नाभेरुर्ध्वं समुच्चरन ।

मुखे भिव्यक्ति मायाति यः स नाद प्रकीर्णितः ॥ (श्लो. सं ९७)

अर्थ: आकाश, अग्नि और पवन से जात होकर नाभि से ऊपर उठकर जो भूख से अभिव्यक्त होता है उसे नाद कहते हैं ।

श्लोक : पबना चलना मानौ नादौ तु परिकीर्णितः ।

जातस्तयोर्यतो योगत्वे नादइति स्मृत :

अर्थ : पवन से 'न' अक्षर, अग्नि से 'द' अक्षर मिलकर 'नद' हुआ, जो नाद के नाम से परिचित है ।

उपसंहार : – पिण्ड, ब्रह्माण्ड – दोनों में हर्ता, कर्ता, विधाता ही नाद है । यह नाद पंचभूत से जन्म हुआ और उसे पहचानने में आसान हुआ । पंचभूत जन्म न लेता तो शून्य से शब्द और शब्द से पुनः शून्य ही रह जाता ।

यह नाद जड़ और जीव दोनों में सम्भव है ।

यह नाद पिण्ड की दृष्टि से उर्ध्वमुखी होकर क्रमशः

पाँच प्रकार हो जाते हैं :- १. सुक्ष्म, २. अतिसूक्ष्म, ३. व्यक्त, ४. अव्यक्त और ५. कृत्रिम ।

इतने सारे प्रामाणिक तथ्य उद्धार करने के कारण केवल मात्र भारत वर्ष का अतीत, वर्तमान और भविष्य के बारे में ध्यान आकर्षण करना है ।

भारतवर्ष के ओडिशा राज्य, अतीत में वह कोशल, कलिंग, उत्कल आदि के नाम से जाना जाता था । इतिहास की दृष्टि से ओडिशा में पश्चिम ओडिशा या दक्षिण कोशल स्थान सर्वोपरि है ।

विवर्तन वाद

ओडिशा के गिने-चुने विद्वानों के द्वारा लिखित इतिहास से कुछ उधृत करना उचित होगा। क्योंकि पश्चिम ओडिशा या कोशलांचल संगीत के साथ मूलतः शंश्लिष्ट है।

ओडिशा संगीत नाटक एकाडेमी द्वारा सर्वोच्च सम्मान भंज पुरस्कार से अलंकृत ड. दामोदर होता द्वाराचित भारतीय संगीत इतिहास से कुछ उद्धार किया जा रहा है।

संगीत समबंधीय कुछ भी जानने का आग्रह करने से पहले शोध कर्त्ता, संगीतकार विद्यार्थियों का भारतीय संगीत इतिहास का ज्ञान होना अति आवश्यक है। संगीत जगत में प्रवेश के लिए मानव जीवन में संगीत का वलिष्ठ योगदान, विकाश और संगीत से अधिक किस प्रकार हुआ उसका समृद्ध ज्ञान, मानव सभ्यता तथा संस्कृति का इतिहास एक मुख्य अंग है। इसका ज्ञान पाने से पहले मान शृष्टि का इतिहास जानना होगा।

महान बौज्ञानिक चार्ल्स रॉबर्ट डारवीन द्वारा प्रवर्तित विवर्तनवाद के बारे में हमारा सम्यक ज्ञान जरूरी है।

सभ्यता और संस्कृति परिवर्तन शील है। अधिक समय तक कुछ भी अपरिवर्तित नहीं रह सकता। ज्ञान की अभिवृद्धि तथा लोक रुचि परिवर्तन के साथ समता रखते हुए परिवर्तित होता है। ज्ञान की अभिवृद्धि से रुचि मार्जित होती है, उसी परिमाण में लोकसंस्कृति परिवर्तित होती है। उस दृष्टि से सभ्यता और संस्कृति परिवर्तन में ज्ञान और विज्ञान की भूमिका अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण है। क्योंकि ज्ञान-विज्ञान क्षेत्र में जितने परिमाण में उत्कर्ष साधित होते हैं उतने परिमाण में सभ्यता और संस्कृति प्रमाणित होकर समयानुक्रम में परिवर्तित होता है।

सभ्यता और संस्कृति को अगर हम भली भाँति देखना चाहेंगे तो बीसवीं सदी की सभ्यता और संस्कृति के पीछे देखेंगे शब्द अत्यन्त प्रखर हुआ है। उसकी तुलना में अष्टादश-उनवींश सदी की गति मंथर रही। तदरूप हम जितना जितना पीछे देखेंगे गति अति मंथर ही है, इस आधार से पुराने काल की सभ्यता और संस्कृति को अनुध्यान करने पर पता चलता है कि यह सभ्यता और संस्कृति की समय सीमा बृहत्तर है। गति भी तदरूप मंथर है।

इतिहासकारों - के अनुसार मानव सभ्यता और संस्कृति की समय सीमा २ भगों में वँटी हैं - प्राग ऐतिहासिक युग, ऐतिहासिक युग। प्राग ऐतिहासिक युग ई. पू. ७००,००० से ७,००० तक व्याप्त था और ऐतिहासिक युग ७,००० से आजतक। इस से यह प्रमाणित होता है कि प्राग ऐतिहासिक युग की सीमा ४२० हजार वर्ष बीत जाने

के बाद ऐतिहासिक युग केवल सात हजार वर्ष अतिक्रम नहीं कर पाया है , ऐतिहासिक युग में जिस तरह सभ्यता और संस्कृति का परिवर्तन तथा विकास हुआ है , उसी प्रकार प्राग ऐतिहासिक युग की सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में संभव नहीं था । अपितु प्राग् ऐतिहासिक युग की सभ्यता – संस्कृति कल्पनातीत मन्थर था ।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राग ऐतिहासिक युग का मानव और उसकी संस्कृति एक निर्दिष्ट धारा में लिपिवद्ध कैसे रह सकते हैं ?

पर अंचल को लेकर सन्तक के रूप में कहीं पत्थर तो कहीं एकलकड़ी को चिन्हित कर । उसे देवता मानकर एक निर्दिष्ट शैली में उस समय अपनी अपनी संस्कृति को संभाल कर रखते थे ।

आर्य सभ्यता की नीव सिन्धु सभ्यता से शुरू हुई, ऐसा ऐतिहासिक मानते हैं । सिन्धु सभ्यता को यदि शिष्ट सभ्यता माना जाता तो उससे पहले । भारत नहीं था और मानव भी नहीं थे ? यदि थे भी तो संस्कृति हीन थे ? यह उत्तर सही नहीं लगता । मानव यदि थे, भारत था परंतु अपनी गोष्ठी की संगति के लिये एक एक नियम के अनुसार चलते थे ।

समग्र भारत को , एकत्र बाँध कर रखना संभव नहीं था । कारण आदि मानव और संस्कार की बाद की जाए तो दोनों के इतिहास पर झाँकना होगा ।

आर्यों के भारत आगमन से पहले भारत था, कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्य बाहर से नहीं आये वे पूर्णतः मारतीय हैं । केवल संस्कारी होने के कारण उन्हें आर्य कहा गया । यह विवादित विषय है । इतिहास में कहा गया है कि भारत के मूल निवासी आदिवासी हैं । उनके बाद द्राविडों का आगमन हुआ । तत् पश्चात आर्यों का आगमन हुआ है ।

भारत का संस्कार सिन्धु सभ्यता से माना गया है । उस समय आदिवासियों की सभ्यता बहुत उन्नत थी, क्योंकि पर्वत, गुँफा, नदी किनारे दो पेड़ों के बीच या तीनों को जोड़कर रहने में सुधार आ चुका था । दोताला घर बनाकर उसमें भविष्य के लिए अनाज रखना, बड़े बड़े घर, गृहपालित पशुओं के रहने के लिए अलग मकान आदि में अन्नति हो चुकी थी ।

मानवीय गुणों के विकाश के साथ साथ मनोरंजन का विकाश, तदनुसार हुआ था । आदि मानव यहाँ-वहाँ भटकता रहता था । जहाँ भोजन की व्यवस्था हो जाती, वहीं वह घर –परिवार के साथ, आनन्द का उपभोग करता था ।

संगीत का विकास प्रस्तर युग से शुरू होकर सिन्धु सभ्यता तक पहुँचा। तब भारत के आदिवासी (अधिवासी) द्राविड और आर्यों का एक साथ रहना संभव हो गया था।

विश्व का एक लुभावना देश – भारत है। अतः बाहरी देशों का आक्रमण होता रहा, जिसका शिकार निवासी हुए। वानराकृत मनुष्य से आदि मानव तक जैसे तैसे भारतीय मूल निवासी अपना गुजारा कर लेते थे। जब लिंग भेद से परिचित हुए, तब एक से द्वैत परिवार, गोष्ठी होने लगे। तब गोष्ठी गोष्ठी के बीच युद्ध होते रहे। उन दोनों गोष्ठियों के बीच में 'गण्डा' जात गुप्तचर वृत्ति तथा स्वकीय गोष्ठी की संपत्ति का देखभाल करते एवं विरोधी गोष्ठी की संपत्ति चोरी कर लेते थे। विश्वसनीय होने के कारण द्राविडों के आगमन के समय में यह गण्डा जात आदिवासी और द्राविड के बीच मध्यस्तता करते रहे। अंत में द्राविडों और आदिवासियों की जीवन शैली में मेल-मिलाप होने से एक साथ रहने लगे। परन्तु बीच-बीच में यह युद्धखोर आदिवासी और द्राविड के बीच युद्ध होते रहे। तत्पश्चात् पंजाब की तरफ से आर्यों का आगमन हुआ : द्राविड और आदिवासी परस्पर विरोधी भाव का लाभ उठाते हुए इन दोनों गोष्ठियों में विवाद शृष्टि कर खुद युद्ध करते रहे। आर्यों के भारत आगमन के समय उनके पास कुछ सांकेतिक लिपि करने के व्यतीत और कुछ अधिक ज्ञान न था। आदिवासी, द्राविडों की कला-संस्कृति, सामाजिक चलन के साथ-साथ आध्यात्म परंपरा को स्वीकार करके अपनी उसने चालाकी से एक नई धारा की प्रतिष्ठा कर लिया। आर्य बार बार आदिवासी-द्राविडों के साथ झगडते रहे। तब द्राविड लोग भारत के दक्षिण में चले गये और आदिवासी बन-पर्वतों में रहने लगे। इनकी निष्ठा, कला संस्कृति, परंपरा के प्रति अधिक थी।

प्रस्तर युग के आदिमानव से लेकर अत्याधुनिक काल तक आदिवासी और उनके साथ चलते आ रहे गण्डा जात के ऊपर कितने सारे लाँछन लगाए हैं। आदिवासियों के व्यक्तिगत समाजिक प्रथा को अन्धविश्वास कहा गया, और गण्डा जात को पतीत, अस्पृश्य कर दिया गया। पर अपनी संस्कृति से उनका इतना लगाव था, कि वे हर प्रकार की लाँछना सहने के लिये तैयार थे और अपनी संस्कृति को बड़े सम्मान के साथ निर्वाह करते आ रहे हैं।

वे शुन्य, शब्द, पंचमहाभूत, प्राण, शरीर और ज्ञान को इस प्रकार जानते थे कि उन्होंने अपने समाजिक प्रचलन से एक सांस्कृतिक परंपरा की गोष्ठी कर ली। यही आदि परंपरा का विशेषत्व का प्रतिपादन इतिहास पुराण भी करते हैं।

आदि मानव के पास रहने का घर तो न था खाने के लिए भी कोई साधन न था।

भूख शांत करने के लिए वह पशु पक्षी के कच्चे माँस पर निर्भर करता था। प्रकृति कृत पर्वत खोद कर या पेड के ऊपर निवास करना और सुविधानुरूप भोजन प्राप्त करना उसके प्रचंड संधर्षमय जीवन का आभास कराते हैं। क्रमविकास की धारा में लिंग परिचय होने के उपरांत परिवार, गोष्ठी बनने लगे। गोष्ठीगत शिकार में संपन्नता से आनंदित होकर अपनी छाती, जानु एवं दोनों हथेलियों से ताली पीट पीट कर अपनी गौरव गाथा गाने लगा। अग्नि उन्हें कच्चे से जले हुए माँस तक ले गया। और शिकार से उतारे गये चमड़ों को गड्डों के ऊपर ढँक कर हाथ या लकड़ी से उसे पीटकर बजाया गया। अतः चमड़े के मध्य और अंत भाग में भिन्न भिन्न शब्दों को नीश्चित कर स्थूल – सूक्ष्म शब्दों को निखारने लगे। मानव आदि प्रस्तर युग से अंतिम प्रस्तर युग तक प्रकृति जात शब्द एवं संकृत शब्द की तुलना करके संस्कार की ओर बढ़ने लगा।

‘ओडिशा के प्राग ऐतिहासिक युग की सभ्यता और संगीत’ इस विषय पर ड. दामोदर होता लिखते हैं ‘प्राग ऐतिहासिक युग में खाद्य, पेय और आश्रयस्थल मानव की सर्व निम्न आवश्यकता थी। वे गुफाओं और पेडों के खोखले भाग में रहते थे। यह प्रश्न तत्वबित – गवेषकों के द्वारा ओडिशा के विभिन्न अंचल का खनन व सर्बेक्षण द्वारा जो कुछ प्राप्त हुआ उसको ध्यान में रखकर तत्वविरो ने स्वीकार किया है कि प्राग ऐतिहासिक युग में ओडिशा में मध्य और नूतन प्रस्तर युगीय मानव सभ्यता का अभ्युदय हुआ था (भारतीय संगीत इतिहास, पृ ११५)

ओडिशा के मयुशभंज, ढेंकानाल, सुन्दरगड, कोरापुट, कालाहान्डी, बलांगीर, केन्दुझर आदि जिलों के कुछ निर्दिष्ट अंचल में प्रस्तर युग के कुछ उपादान मिले हैं। अतः संपृक्त अंचल की सभ्यता प्रस्तर युग की सभ्यता का समसामयिक है, एक अंश है।

पुरातन प्रस्तर युग में संगीत :

पश्चिम ओडिशा या कोशलांचल की भाषा का मूल क्या था ,यह तो कहना संभव नहीं है । क्योंकि आदिवासी द्राविड़ और आर्यों के आगमन हेतु, संभवतः एक मिश्रण भाषा हो गया होगा । अभी भी आदिवासी अपनी एक स्वतन्त्र भाषा में बात करते हैं ।

संभवतः मूल आदिवासी विभिन्न पशु-पक्षियों के स्वर या ध्वनि, झरने की कल-कल ध्वनी का अनुकरण कर अपने कर्ण से उसी प्रकार आवाज निकाल कर गाता था । मधुर ध्वनियुक्त पत्थर, बाँस और लकड़ी से आघात कर, इन सब को वाद्यों के रूप में व्यवहार करता था । मृग, मोर तथा अन्य पशु-पक्षियों के अंग चालन को देखकर उसी प्रकार उछलकूद कर नृत्य का रूप देता था । उस समय का संगीत अविकसित तथा अनुन्नत होगा , यह विचार आधुनिक युगीन गवेषकों का मत है ।

इसी आधार पर मध्य प्रस्तर युग में और विकसित होकर पुरातन प्रस्तर युग से मध्य प्रस्तर युग का मानव अत्यन्त उन्नत हुआ । अनुमान किया जाता है कि उनकी रुचि परिवर्तित होने से, मार्जित जीवन यापन प्रणाली, उन्नत चिन्ता धारा तथा उन्नत शृजन और प्रवृत्ति उसकी सभ्यता संस्कृति को उन्नत पथ पर ले गये । उस समय की भाषा, सहित्य, संगीत उन्नत होने लगे । क्षुद्र शब्द के माध्यम से एक पूर्णांग संगीत में उतार दिया । मध्य प्रस्तर युगीय मानव का विशेष अवदान कांडवीणा और भूमि दुंदुभि है – से दोनों वाद्य यन्त्र अभी भी एक प्रतीकात्मक अवस्था में प्रचलित हैं, जैसे – बिना बाडी (काण्ड बीणा) निषान या धुमसा, लुहा (भूमि दुंदुभि) आदि । पुर्व आलोचित तथ्य के अनुसार भूमि-दुंदुभि से विशेष ध्वनि उत्पन्न कर उसको तालवाद्य के ध्वनि के रूप में अपने गायन-नर्तन में इन लोगों ने व्यवहार किया है ।

विश्वासयोग्य है कि ओडिशा के जहाँ जहाँ मध्य-प्रस्तर युग का अश्यदय हुआ है वहीं वहीं उसी युग के संगीत क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति साधित हुई है ।

ओडिशा में जितने सारे अवनन्ध वाद्य प्रचलित हैं जैसे-ढोल, निषाण, टमक, (टिमकिडि) तासा, वीरवाद्य, गोपवद्ध, (गोपीतारा) खजनी, घुमुरा, भाण्डवाद्य घुमुसा बडलोहा आदि का जन्म भूमि दुंदुभि से हुआ है । भूमि दुंदुभि से क्रम विकाश होते हुए विभिन्न स्थूल सूक्ष्म ध्वनियों का अनुकरण कर पश्चिम ओडिशा या पुरातन दक्षीण कोशलांचल में यह पंचवाद्य (जो किरण या स्थाही रहीत है) मध्य प्रस्तर-युग में विकसित हुआ । इस वाद्य को अब भी “गण्डा“ जाति एक श्वतन्त्र गोष्ठी वजाती आ रही

है ।

युग बदलता गया और संगीत भी बदलते गये । रुचि के अनुसार संस्कार होता गया । लकड़ी के स्थान पर लोहा का व्यवहार होने लगा, फिर मुहुरी का विकाश हुआ ।

भारत का मध्य प्रस्तर युग को संगीत के क्षेत्र में सुवर्ण युग कहा जा सकता है । ऐसा एक 'पाँच ध्वनिगुण' जो स्थूल, शूक्ष्म, स्थूल-सुक्ष्म मिश्रित, कर्कष और मधुर ध्वनि को अनुध्यान करके पाँच प्रकार के वाद्य तैयार कर अवतक व्यवहार करते आ रहे हैं ।

भारत का इतिहास वर्तमान (प्रस्तर युग के उपाय) विभिन्न दिशाओं में विकाश की ओर बढ़ता आया है ।

आदिवासी, और आर्ये में बार बार युद्ध होने के उपरांत द्राविड अपनी आदि परंपरा को छोड़ने के लिए तो तैयार नहीं हुए और दक्षीण की ओर चले गये । आदिवासी लोग यद्यपि शांत, कर्मठ और सहिष्णु है, फिरभी परंपरा के लिए कठोर पन्थी है । इस कारण आदिवासी लोग भी जंगल, पहाड़ों में अपना निवास -स्थापन कर रहने लगे । उनके इलाके के गोष्ठियों के एक संस्कृति इष्ट के नाम से किसी-पत्थर' या लकड़ी को अपना देवता मान कर पूजा-आराधना करने लगे । इस आराधना को उनकी भाषा में "लाका" कहा जाता है तथा उस देवता को मानने वाली सीमा को इलाका कहते हैं । उनकी परंपरा में वाधा डालने वाले शत्रु को, समझते हुए उसका विनाश कर डालते हैं तथा उसका खून अपने देवता को समर्पित कर प्रार्थना करते हुए कहते थे (माँ/बूढ़ा तोर चलती के वाधा देला हेतु तोर ठाने देउछें) अर्थात् अपनी संस्कृति के विरुद्ध कृतधनता करने वाले शत्रु को वे वलि के रूप में चढाते थे । प्रायतः आदिवासी आर्यों के नीतिगत विरोध और युद्ध के कारण भारत में नरबलि प्रथा प्रचलित होने लगी ।

आदिवासियों से द्राविड तो बिखर गये पर आर्य लोग कई गोष्ठियों में वँट कर परोक्ष रूप से आदिवासियों की संस्कृति को अपनाते हुए कुछ मन्त्रों का संयोग करने के कारण इन दोनों दलों के गुप्तचर वृत्ति करने के लिये एक स्वतन्त्र जात उत्पन्न हुई ।

आर्यों ने मानव जाति को चार जातियों में विभाजित किया - १.ब्राह्मण, २ क्षत्रिय, ३ वैश्य, ४.शुद्र ।

इन चार जातियों में गुप्तचर (जासूसी) करने वाली जाती सामिल नहीं थी । उनको एक स्वतन्त्र जात की मान्यता दी गयी वह है 'चाण्डाल' जात । अपने स्वार्थ के लिए तथा आदिवासी, द्राविड से अलग हो जाने से, चाण्डालों की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया गया । उन्हें अस्पृश्य, दलित, पतित, कहकर दासत्व स्वीकार करने के

लिए मजबूर किया गया ।

ये अस्पृश्य दलित, पतित जात ओडिशा तथा पश्चिम ओडिशा और कोशलांचल में निम्न लिखित नाम से परिचित हुए जैसे – गण्डा, पाण, डम, चमार, घासी कुलि आदि ।

इस अस्पृश्य जाति के बिना हम गुजारा नहीं कर सकते । भारत, जाति की सभ्यता उसके परिवेश और सांस्कृतिक परंपरा से युग मालुम पडता है । इस लिये उच्चवर्ग, इन जाति समूह को अस्पृश्य मानते तो थे, परंतु यह जाति मानव जीवन में कितना आवश्यक है, यह विचार करने योग्य है ।

इसके साथ अनेक जाति हैं जो उच्चवर्ग के साथ रहते आये हैं । इनका सहयोग समाज के लिए कितना जरूरी है यह सब परखने के बाद ज्ञात होगा । यह पता चलेगा कि मानव कल्याण की चिंता उन दलित, पतित अप संस्कारित, अस्पृश्य जाति में किस सीमा तक थी ।

शून्य से लेकर शब्द ब्रह्म तक की चिंता आर्यों के आने से पहले भारतवर्ष में था या नहीं ? उत्तर हाँ ही होगा क्योंकि प्रस्तर युग से भारत का परिचय आदि मानव दे चुके हैं ।

ऐतिहासिक युग की समय सीमा निरिक्षण करने से ज्ञान होता है कि यह युग नूतन प्रस्तर युग से आरंभ हुआ । इससे पहले प्राग ऐतिहासिक युग था । इसलिए इस युग को प्राग ऐतिहासिक और ऐतिहासिक युग दो भागों में वाँटा गया है ।

संभवतः प्राग ऐतिहासिक युग में लिखना, पढना नहीं था या तो उस समय की घटनाओं को लिपिबद्ध करना संभव नहीं था । अतः वानराकृत मनुष्य तक के युग को प्रागऐतिहासिक युग कहा गया है । ई.पू. ३०००,००० से ५००० ई. तक व्याप्त । विद्वानों ने प्राग ऐतिहासिक युग को तीन भागों में विभाजित किया गया है । १-प्राचीन प्रस्तर युग २-मध्य प्रस्तर युग और -नूतन प्रस्तर युग ।

भारतवर्ष का मानवीय विकाश धारा का परिचय नूतन प्रस्तर युग से ही माना गया है, परंतु पुरातन प्रस्तर युग का होना तथा वानराकृत मानव से मानव तक आकर सभ्यता का विकाश करने वाली सभ्यताओं में भारत भी अन्यतम है । अतः मानव जाति धीरे धीरे अपने विवेक को पहचानना आरंभ कर चुकी थी । प्रामाणिक दृष्टि से वर्तमान भी भारत में तथा ओडिशा के पश्चिम भाग में पत्थर के अस्त्र शस्त्र खुदाई से मिल रहे हैं ।

ऐतिहासिक युग की आलोचना करें तो प्रथम ताम्र और ब्रॉंच युग द्वितीय लौह युग

। इस विषय पर विशेष आलोचना, अनावश्यक कारण विषय इतिहास में लिपिबद्ध है ।
उपसंहार : -

शब्द ही ब्रह्म । यह शब्द विकाश- विनाश का कारण भी है । शब्द बिना न शृष्टि न जीव जगत । शब्द से उत्पन्न कंपन ही शृष्टि तत्व है । कंपन बिना शृष्टि की आलोचना नहीं की जा सकती । इतने सारे उदाहरणों का तात्पर्य यह है कि समग्र विश्व निर्माण का मूल तत्व शब्द है । एवं इस गभीरतम विषय पर आदिकाल से परीक्षा निरीक्षा चलती आ रही है । आज आधुनिक युग का वैज्ञानिक आदिकाल को मूल आधार मानते हुए सभ्यता के विकाश के मार्ग का ढूढने में लगा हुआ है । यदि शब्द जब मध्य प्रस्तर युग में नारी पुरुष के लिंग भेद को भलिभाँति पहचान कर एक से द्वैत, गोष्ठि, गाँव, सहर, नगर बसाने लगे, मनन, चिन्तन, मन्थन, के जरिये शब्द को श्रमलाघब सतर्क, देव-पूजन सामाजिक उत्सव आदि में व्यवहार करने लगे । भारत का शब्द संस्कार पश्चिम से पूर्व की तरफ गति किया है । वर्तमान की ओडिशा की पश्चिम दिशा तथा भारत का पश्चिम पूर्व मध्य भाग, जो कि दक्षिण कोशल के नाम से जाना जाता था, आज पश्चिम ओडिशा के नाम से परिचित है । दक्षिण -कोशल व पश्चिम ओडिशा, वन,पर्वत नदी, झरने से घिरा अंचल होने के कारण शब्द अनुसंधान तथा विनियोग में इस अंचल का अवदान अतूलनीय है ।

शब्द का स्थूल, सूक्ष्म, कंपन, ध्वनि, प्रतिध्वनि,तरंग आदि को महाजागतिक संगीत से अनुकरण कर, अपनी वृद्धि चिन्तन अनुसार मानव अपने कर्म में व्यवहार करते आ रहा है । लोगों के लिये, लोगों के द्वारा आविष्कृत शब्द -ध्वनि का कंपन तथा ऊँच-नीच, मधुर तिक्तादि अनुभव कर नव रस का आविष्कार किया गया है ।

मध्यम प्रस्तर युग से अंतिम प्रस्तर युग तक भूमि दुंदुभि तक वाद्ययंत्र का उद्भावन हुआ । उस समय व्यवहारिक भाषा का व्यवहार होता होगा, इस विषय पर अभीतक कोई सिद्धांत नहीं है । अतः संगीत का मूल वाद्ययंत्रों से हुआ और तत पश्चात नृत्य तथा अंतिम पर्याय भाषा सिद्धान्त के बाद गायन आरंभ हुआ ।

आदि मानव के पारिवारिक आवास स्थापन आदिवासी के नाम से परिचित है । ये आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं । ओडिशा के पश्चिम भाग (पश्चिम ओडिशा) आदिवासी बहुल अंचल है । बाद में द्राविड़ के आगमन की बात पहले से की गयी है ।

आदिवासी, अधिवासी तथा विभिन्न समय में बाहर से आई जाति को इस अंचल में छत्तीस पाटक कहा गया है । जैसे - कुलता, मालि, तेली, डुमाल, गौड, नापित,धोबी, ओडिआ, भुलिआ, अघरिया, गण्डा, घासी, चमार, माहार, कुली आदि में सब एकोदरिय परिवार के सदश्य की तरह चलते आये हैं । अपनी जातिप्रथानुसार उपासना, सामाजिक

कर्म, अर्थनैतिक विकास तथा मनोरंजन का साधन सृष्टि कर अपनी परंपरा के अनुसार आनंद से रहते हुए, संहति के नाते आदिवासी अधिवासी छत्तीस पाटक एक होकर अपना जीवन निर्वाह करते थे ।

आर्यों के आगमन पश्चात उनके प्रभाव के कारण जातिप्रथा का आरम्भ हुआ । आदिवासियों को अन्धविशासी, अपसंस्कारित अधिवासी छत्तीपाटक जाति को सेवक तथा परिवेश की रक्षा करने वाली जाति को अस्पृश्य, जलील, पतित के नाम से बाँटने के कारण समाज में गोष्ठीवाद का जन्म हुआ ।

पूर्व आलोचना में शून्य शब्द के बारे में कहा गया है । शब्द ही संगीत का आधार है । शब्द ही शून्य है । शब्द और संसार में कोई अन्तर नहीं है । जिसप्रकार शब्द और संसार के आगमन तिरोधान के बारे में अस्पष्टता है, उसी प्रकार संगीत के आरंभ ओर समाप्ति के बारे में भी कुछ कहा नहीं जा सकता ।

संगीत, शब्द शब्द का एक खेल है । उसे न देखा जा सकता है, न छुआ जा सकता है, न चखा जा सकता है । केवल अनुभव ही किया जा सकता है । क्या यह अनुभव प्राग-ऐतिहासिक युग में नहीं था ?

मानव सभी जीवों से उन्नत है । इसमें चिन्तन शक्ति, विचार शक्ति,विवेक शक्ति समाहित है । अतः प्राग -ऐतिहासिक युग से शब्द अनुसन्धान अभतक जारी है । इस विषय पर वेद पुराण में तथा ऐतिहासिक गवेषक बहुत प्रमाण दे चुके हैं । पहले ही आलोचना की गई है कि मध्य प्रस्तर युग में ही संगीत का उद्भावन, आविष्कार, संस्कार होने के कारण इसे सुवर्ण युग कहा जाता है ।

भूमि -दुंदुभि, आदिवासियों की देन है । पर कोशलांचल में 'गंडा' जाति के नाम से परिचित कलाकार धीरे धीरे शब्द ध्वनि के महत्त्व को समझते हुए बाकी बाद्य यन्त्रों का संस्कार किया है ।

निर्धारित विषयों पर चर्चा के पहले जिस जात के नाम पर वह विषय निर्भर करता है । उस जात के वारेमें धारणा होना आवश्यक प्रतीत होता है । आदिवासी, द्राविड आर्यों का विश्वस्त सेवक गंडा जात जो कि उच्च वर्ग जात का दिया गया 'गण्डा' नाम है ।

गण्डा बाजा की संगीत परंपरा

गंडा बाजा का उद्गम एवं इतिहास

भारतीय बाद्य उद्गम इतिहास में भूमि र्दुंधि का स्थान सर्वाग्रे है । मानवीय गुणों के संस्कार के साथ साथ गण्डा बाजा का भी संस्कार होता गया ।

क) आफ्रिका के विद्वान इसालि के मतानुसार आदि मानव और आदि नारी सर्ब प्रथम जल मे सन्तरण करते समय जल का मधुर ध्वनि से आत्म विभोर होकर परष्पर आलिंगन किये थे ।

ख) मिसर देश के एक कला बिशेषज्ञ के मतानुसार मनुष्य ने प्रकृति से संगीत सत्ता का अनुभव, उपलब्धी की है । झरना के कल कल नाद, जल प्रपात के गम्भीर गर्जन, पक्षियों के निस्वन, समीरन के मन्द फुजरन, आदि से भिन्न भिन्न स्वर की उपलब्धि कर समस्त स्वर को अनुकरण करके संगीत सृष्टि करने लगा । धीरे धीरे कलात्मक कल्पना और चिंता शक्ति बृद्धि हेतु संगीत को सुमधुर करने लगा ।

ग) विख्यात संगीतकार रिन्बो बोलस के मतानुसार आदिमानव ने जल के ध्वनि से ही संगीत की शिक्षा प्रारम्भ किया है । जल प्रपात ध्वनि को अनुकरण कर आदि मानव ने प्रथम स्वर उच्चारण किया । और बुद्धि का बिकाश के साथ अपने संगीत का सुधार किया ।

घ) सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान मि.जि. एन रानाडे मतानुसार अदि मानव पक्षियों में से संगीत शिक्षा प्रारम्भ किया ।

ङ) मतंग मुनी रचित 'बृहद्देशी' ग्रन्थ में 'कोहल' मुनीजी के मतानुसार पक्षियों से ही सप्तस्वर संगीत का जन्म हुआ है ।

ड. दामोदर होता उपसंहार मे लिखते हैं कि

प्राग ऐतिहाकि युग का आदि मानव निघंच जंगल मे वास करता था । प्रकृति का (भिन्न भिन्न) अलग अलग स्वरूप अबलोकन कर अनेक प्रकार की भावनाओं भावना में अभिभूत होता था । ग्रीष्म ऋतु में रुक्ष और तप्त मृत्तिका के करुण आर्त्तनाद, नद नदियों को गुरू गम्भिर गर्जन, झिंकार का झिं स्वर, मयुर मयुरी का मिआउँ मिआउँ शरत काल निर्मल चन्द्र शोभित आकाश, बिभिन्न पत्र पुष्प भरा वसुन्धरा, हेमन्त ऋतु होमाबृत प्रकृति की अपुर्व श्यामलिमा, शिशिर ऋमें शिशिर सिक्त ज्येस्ना का अनुपम महोत्सव तथा वसन्त ऋतु काल में अनेकानेक पीत पूष्पराजी एवं सबुजिमा बिमंडीता धरित्री अनिर्वचनीय

शोभा च्युत पल्लवस्थ कोकिल (कुइलि) कूहु कुहु तान, इसके अलावा उदयास्थरबि अलौकिक रक्तिम आभा । सौन्ध्या कालिन आकाश का अपरूप स्योन्दर्य, सप्तरंगी इन्द्रधनु का बर्णिल सुषमा, वाँस बृक्ष का छीद्र से निर्गत मधुर स्वर एवं सर्प, ब्याघ्र सिंह इत्यादि हिंस जन्तुओं के भयंकर स्वरुप और गर्जन, कृष्ण पक्ष रात्री की अन्धकार विभिषिका, शुक्ल पक्ष रात्रि की चित्ताकर्षक शोभा, विभिन्न प्रकार पक्षिओं का विभिन्न निःस्वन तथा भ्रमर का मधूर गुजन, आदि मानव को अभिभूत किये थे उसी प्रकार प्रकृति के विभिन्न सामयिका समान्तर गति युक्त परिवर्तन की साथ उक्त परिवर्तन का समान्तरता, हृदयन्त्र और नाडी का समान्तर गतियुक्त षण्दन इत्यादि ने उसे चमत्कृत किया था । (भारतीय संगीत इतिहास, ड. दामोदर होता)

निदान :-

गण्डा बाजा की उत्पत्ति और पंरपरा के बारे मे पहले ही सम्यक धारणा दी गयी है । विस्तारित रूप से विवचन किया जाए तो । दामोदर होता जी के साथ सहमत प्रकाश करते हुए । कोशलांचल प्राग ऐतिहासिक युग से बिद्यमान आदि सभ्यता के इतिहास के बारे में ओडिशा सरकार के पश्चिम औडिशा विकाश परिषद द्वारा प्रकाशित ड. डि.बि. मिश्र द्वारा लिखित **History of west osdisha** किताब में बस्तृत वर्णन किये हैं । निद्धारित बिषय से बिछिड जाने के भय से उसके आलोचना परबर्त्ति समय मे अबतारण करेंगे ।

भारतीय इतिहास में 'कोशल' शब्द और राज्य के बारे में अलोचना हुई है । प्रचीन सभ्यता से लेकर महाभारत युग तक कोशलांचल उसकी स्थिति परिस्थिति वर्णित है ।

गण्डा बाजा का सुधार आदिमानव से संस्कारित आदिवासी और अधिवासी एवं एक अंग गण्डा संप्रदाय के साथ मिल जुलकर किये हैं । गण्डा बाजा की आजकी स्थिति एक संघति सूत्र में बंधे अनेक जात का मिश्रित अवदान है ।

गण्डाबाजा मे जितने सारे पार या ताल बजते हैं वह केवल मनोरंजन मात्र न रहकर आध्यात्म, समाजिक, अर्थ नैतिक तथा मनोरंजन इन चारो विभागों में प्रयोग कर सफलता प्राप्त हुआ । छन्द बाद्य कारिगर - गण्डा जात को समस्त श्रेय जाता है ।

कोशलांचल में बसे आदिवासी ध्वनि प्रिय थे । श्रबणेन्दीय के द्वारा ग्रहण कर अनाहत गृह में आनन्द लेने में माहीर थे । आदिबासी ध्वनी बिना न जीए थे ना जिएंगे । अनेक प्रकार आदिवासी कोशलांचल मे वसवास करते आये हैं । ओडिशा का पश्चिम भाग पश्चिम ओडिशा तथा कोशलांचल एक आदिवासी तथा गण्डा संप्रदाय बहुल क्षेत्र है

आदिवासी, गण्डा संप्रदाय व्यतीत और अनेक जात सरकारी कागजात अनुसार आदिवासी और तपसिल भुक्त जाति हैं प्रत्येक जात के कुल देवता, सामाजिक प्रथा तथा मनोरंजन व्यवस्था स्वतन्त्र है। उन्ही के बीच बसे गण्डाजात अपना पुर्बजों से सुने सीखे गण्डाबाजा को प्रत्येक संप्रदाय के प्रत्येक ब्यक्तिगत कार्य में भिन्न भिन्न छन्दानुसार बजाते आये हैं।

आदिवासी यों का जनमत तथा लोक वार्त्ता में कहते हैं कि गण्डा जात गान्धर्व बिद्या मे पारंगम, कठिन से कठिन कार्य संपादन करने में समर्थ, हेतु आदिवासियों का एक बिश्वस्त तथा आत्मज कहलाते हैं। कोशलांचल में विकाश और अग्रसर के बाद राज्य ओर राजा जमीनदार सृष्टि होने लगे। प्रशासक गोष्ठि में गाँव गउन्तिआ या मुखीआ गण्ड या कन्ध संप्रदाय रहते थे। शासन धारा ठीक रूप से चलाने के लिए गण्डाजात एक बिश्वस्त जाति होने हेतु उनके चौकिदार (रात्र जगुली) नियुक्त करते थे। समय समय पर गुप्तचर वृत्ति गण्डाजात के जरिये करते थे। आदिवासी जाति समूह सरल। सीतल स्वभाव के होते हैं। मगर उनके अपने रहन सहन या उनके जात परंपरा देवी देवताओं के साथ छेड़ छाड़ बिलकुल सहन नहीं कर पाते उग्र हो उठते और हाथ हथियार के साथ छेड़खानी करने वाले सत्रुका सर काटकर देबी या देबता का बलि चढादेते थे।

आदिवासी बनबासी के चरित्र के बारे में भारत मे जितनी किम्वदन्तिये है किसी निर्दोश या निरीह की वली चढाने का दृष्टान्त नहीं हैं। आदिवासी सरल तो है ही पर निर्भिक साहासी तथा गरीला युद्ध में माहिर है। कभी कलिंग विजय युद्ध के लिये जब सम्राट अशोक सेना सेनापति योद्धा कलिंग भेजे तब पहले ही सैनिक काँ तागिद कर परामर्श दिये थे कि तुम्हारे गंतव्य पथ पर कोशल इलाका आयेगा भूल से भी कोशल सीमान्तर्गत बसे आदिवासीओं से छेड़छाड़ नहीं करना क्योंकि कोशलांचल आदिवासी दिखने में सरल पर गरिला युद्ध मे प्रखर हैं। कहीं छोड छाड कर दिये तो हमारी यह बिशाल सेना उनके सामने कोई काम का नहीं होगा।

योद्धा, सरल, आदिवासी सांस्कृतिक चेतन तथा संस्कृति प्रिय होते हैं। उनके हर कर्म में अपनी परंपरा को प्राधान्य देते हैं तथा उनका पार्शद गण्डाजात द्वारा बजाये जाने वाले गण्डाबाजा का होना अनिवार्य होता है। प्रकृति से बड़े आदिवासी प्रकृति से जन्म तरह की तरह ध्वनि सुनते सुनते तल्लीन हो गये, चाह अनाहत हो या आहत हो दोनो ध्वनि के अनुसन्धान को गण्डा संप्रदाय को आग्रह किये। गन्धर्व बिद्या ६४ कला में माहिर गण्डा जाति प्रकृति से उप्तन्न ध्वनि समूह को आहरण कर पाँच प्रकार बाद्य का

आबिष्कार किये और आदिवासियों के साथ गण्डाजाति, अन्यान्य दलिल पतीत जाति समेत बिभिन्न जाति प्रथानुसार बिभिन्न ध्वनियों को मिश्रण कर उनके मन चेतन पर प्रभावित ध्वनि छन्द के साथ मूल्यांकन कर हर कार्य के लिए एक एक 'पार' या 'ताल' निर्द्धारित कर उपयुक्त परिबेशन करनी हेतु आदिबासी तथा सर्ब साधारण प्रिय भाजन हुए । अपना उदर पोषण के माध्यम वनाने के लए पीढी दरपीढी उत्तर पुरुषों को कौन सि जाति का कौन से काम मे कोनसा पार या ताल बजाया जाएगा । तालीम देने लगे । धीरे धीरे गण्डा बाजा मे ध्वनि गुण को गण्डाजाति ऐसे ढंग से बिनियोग में लाए कि फल स्वरूप कोशलांचल या पश्चिमांचल वासी गंडाबाजा को छोड़ सके ना गण्डाबाजा कलाकार सर्व साधारण अलग हो सके ।

शास्त्रीय तत्व :

शास्त्र का प्रथम लक्षण, तथ्य को लिपि कर रखना द्वितीय : पठन और क्रियात्मक विभाग । तृतीय ध्वनि मिश्रण का ज्ञान । (चौथा) निर्दिष्ट लय के साथ विभिन्न लयों में परिवेषण दक्षता पाँचवा - क्या क्या बजने चाहिये और कैसे बजने चाहिए (६टा) कौनसे क्षेत्र में बजाने चाहिए ७वा में बिभगीकरण तथा निर्दिष्ट धारा मे परिबेशन ८वाँ रस उत्पन्न के लिये ध्वनि की भलिभाँति पहचान ९ गुरुशिष्य परंपरा मे सार्वजनिक शिक्षा ग्रहण उपयोगी होना १० मानव शरीर और सार्वजनिक स्थिति परिस्थिति में उसका प्रभाव । यह सब शास्त्रीय गुण गण्डा बाजा में हैं और यह निश्चित है । भिन्न भिन्न पाँच स्वर बाले बाद्य को एक नादो में परिवर्तन करने की दक्षता आज नहीं पुरातन युग से है । आकाश का प्रतीक (ढोल) की दोनो तरफ का ध्वनि स्वतन्त्र रूप से बजाया जाता है । पर समयानुसार दोनों तरफ ध्वनि को मिलाके एक ध्वनि में परिवर्तन कर बजाते है । इसिलिये पहले ही इसविषय पर सूचित कर श्रृष्टि के मूल शब्द ॐ का पूर्ण नाद तब जन्म लेता है अ भ म -ॐ मिश्रण हो जाता है इती तरह ढोल का चरित्र समान । इसलिये पणब नाम से परिचित है । प्रणब जैसे सब ध्वनिओं का बीज है ढोल भी श्रृष्टिके समस्त ध्वनि को अनुकरण कर बजाया जाताव जो कि बादन कलाकार का दावा है ।

शास्त्रीय धारा जैसे लिपि के ऊपर निर्भर है उसी तरह गण्डाबाजा अपने पूर्वजों तथा कुलीन गुरु द्वारा परिबेशित क्रियात्मक धारा तथा मुख से कहे मार्ग को आश्रय कर उत्तर पीढी ग्रहण करते आये है । विचार दृष्टि से यह सही है । कारण वेद का नाम भी श्रृति है । (जितना भी पुस्तक पठें क्या होगा जबतक श्रीगुरु की मुखार बिन्द से शुने मार्ग और उनका दिखाया हुआ प्रत्यक्ष मार्ग के बेद वाक्य तुल्य पालन नहीं करते है)

गण्डा बाजा मे भिन्न भिन्न पाँच वाद्य स्वर का विभेद को अभेद में रूपान्तरित करना

शायद भारत वर्ष के पुरातन युगका कोइ इतिहास होगा । यह गण्डा बाजा प्रायतः चार विभाग से प्रयोग होकर प्रभाव बिस्तार करने की क्षमता रखता है । आध्यात्म प्रभाव विस्तार करने की क्षमता रखता है । क. अध्यात्म, ख.समाजिक, ग.अर्थनैतिक, घ. मनोरंजन ।

आध्यात्म

पुरातन युग से प्रचलित प्रकृति को देवता मानकर उसकी उपासना करना । प्रकृति और पुरुष में कोई अन्तर नहीं यह बिश्वास के साथ अंतः शरीर में ध्वनि तत्व को आहात नाद से अनाहात में रूपान्तरित करना, शरीर के प्रत्येक से विभाग को गण्डाबाजा से ध्वनि कम्पन के भेद कर परम आनन्द अनुभव करना प्रकृति संगृहित फल पत्र पुष्प समर्पण कर प्रकृति और जीव धर्म में एकाकार हो जाना । ध्वनि कंपन के जरिये शरीर अन्तःकरण शुद्धि के साथ वाक शुद्धि हेतु अलौकिक भाव में प्रवेश कर जाना । गंडा बाजा के माध्यम से उपासना में उपास्य देवता या देवी के नाम से एक स्वतन्त्र 'पारें' या 'ताल' का निर्धारण करना । ध्वनि के माध्यम से शरीर में क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है आदि का मर्म सर्व साधारण को अवगत कराना ।

चेतन, अवचेतन, अचेतन, समाधि, योग क्रिया से ऊपर उठने के लिए कितने प्रकार के **पाबच्च** चाहिये निर्धारित कर प्रत्येक **पाबच्च** के लिये एक एक स्वतन्त्र छन्द युक्त ध्वनि शृष्टि कर एक एक स्वतन्त्र 'पार' या 'ताल' का निर्णय करना । प्रत्येक ताल या पार में उतार चढ़ाव के साथ अल्पत्व बहुलत्व ध्वनि यों की परिचालना करने अपनी आप में एक शास्त्रीय गुण है । यही धारा मानव शरीर में प्रयोग करना और उसमें सिद्धि पाना कोई साधारण बात नहीं है ।

मनको शान्त रखने के लिए मन्त्र,

तन की सही परिचालना हेतु निरोग और दिर्घायु होने के लिए तन्त्र होते हैं ।

मानव का अमूल्य संपद विवेक और योग शास्त्र ने उसको एक चक्र के नाम से परिचित किया है । उस चक्र को आज्ञानुसार परिचालन के लिए जो विशेष ज्ञान की आवश्यकता है वह सब यन्त्र के सहारे संक्षेप में दर्शाया गया है ।

बिशेषतः आध्यात्म जीवन के लिए मन्त्र, तन्त्र और जन्त्र को नकारा नहीं जा सकता । क्योंकि उसमें शब्द, शरीर और बिज्ञान का विनियोग पद्धति का सांकेतिक चिह्न है ।

भारतीय जीवन धारा में यह तत्व सर्व मान्य है तथा सनातन धर्म का मूल आधार है । उसी कारण सर्व धर्म तथा प्रकृति के साथ जीव, जड़ जगत ओत पोत जड़ित है ।

यह सब शास्त्रान्तर्गत है। परन्तु गण्डाबजा में यह सब शास्त्रीय गुण भी उपलब्ध हैं।

लोक धारा : माआ ओ बापा : मिट्टी, आकाश, उर्जा, वायु एवं जल- पंच भूत

पंच शब्द : ढोल, निषान, टिमकि, तासा और महुरी - घण्टि, घण्टा, शंख, कंठ और पल - ५

डाल, पत्र, फूल, दूब, बएठा - आसन, पादासन, धूप, दीप, न्यैवेद्य

पतर, उच्छेन, देअना, देबसा, देझुला, उदलाफिका - आवाहन, संस्थापन, आदि सोडस इसतरह, अनेकानेक उदाहरण हैं जो कि शास्त्र में लिपिबद्ध हैं। गण्डाबाजा में शास्त्रीय गुण अनुसन्धान को प्राधान्य देते हुए आगे बढ़ते हैं। आदिवासी परंपरा में देवता किसी घर या मन्दिरों में आबद्ध नहीं होते। उनके देवा प्रकृति जात एक पत्थार या लकड़ी (पेड़ के एक अंश) या किसी निश्चित अंचल जैसे पर्वत शिखर, नदी के मध्य स्थल के किसी टापु, गाँव के दौराहे या चैराहे के कोने में बसते हैं। वह देवता सबके द्वारा, पूजित हैं। पंचभूत में विभिन्न समय पर परिवर्तन स्थिति अनुसार उन देवताओं के नाम से सार्वजनीन उव्सव मनाये जाते हैं।

प्रकृति से ग्रहण किये गये शुद्ध भाव को मानव शरीर में अनुभूत कराके जन समूह को सचेत कराना उस उव्सव का उद्देश्य होता है। देवता और जनता के लिए मनाये गये उव्सवों में गण्डाबजा ही पौरौहित्य करता है।

गण्डाबजा में पंचभूत का अनुकरणीय ध्वनि है। आकाश का प्रतीक ढोल, जल का प्रतीक निषान, भूमि का प्रतीक टिमकि और वायु का प्रतीक महुरी की निर्माण शैली, उत्पन्न ध्वनि, ध्वनि मिश्रण शैली की विज्ञान स्वकृति के लिए उच्च स्तरीय अनुसन्धान का अह्वान है। अर्थ व्यय समय सीमा तथा विज्ञ वैज्ञानिक गणों से आशा रखी जाती है कि आगे वाद्य जन्त्रों की विशद आलेचना करेंगे।

अध्यात्म क्षेत्र में गण्डाबजा से उत्पन्न ध्वनि गवेषणा का एक बिशेश महत्व पूर्ण कार्य है। आत्मा और प्रकृति में लुक्कायित परम आत्मा का संपर्क निविड़ है। इस आदि काल से अलिपि मौखिक लोक व देशी धारा तथा वैदिक युग की लिखित धारा या मार्गी धारा ने प्रमाणित किया है कि आत्मा, परमात्म कंपन या स्पोट का सिद्धान्त है। (अन्यत्र अनाहात और आहात ध्वनि को विन्दु नाद रूपी ब्रह्म की गारीमा बहन किये है।)

पश्चिम ओड़िशा या कोशलांचल में आहात अनाहत दोनों धाराओं का प्रयोग देखने को मिलता है। गण्डाबजा के माध्यम से आध्यात्मिक परिवेश शृष्टि कर गण्डाबाजा से

उत्पन्न ध्वनि, कम्पन या स्पोट के अन्तःकरण में अनुभव किया जाता है ।

मानव शरीर में देवत्व अवतरण करने की लोक मान्यता केवल कोशलांचल में नहीं समग्र भारत वर्ष में कहीं न कहीं प्रचलित है । अत्याधुनिक तथा विज्ञान का नाम लेते हुए अंध विश्वास या कुसंस्कार कह कर प्रशासनिक तथा मार्ग विश्वासी पंडित गण नाना विध प्रतिवाद प्रतिरोध करने के बाद भी ग्रामांचल में आदि युग से प्रचलित है यह धारा । उस प्रथा पर प्रबलता के साथ लोक विश्वास जुड़ा हुआ है ।

वर्तमान की स्थिति के अनुसार साधक के अभाव और बार बार इस परंपरा पर परोक्ष प्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन अभाव हेतु इसमें कुछ नाटकीय छटा देखने को मिलती है । यह सत्य है परन्तु प्रथा परंपरा असत्य मानी नहीं जा सकती । अब शास्त्र भाषा के साथ लोक धारा की प्रतियोगिता चल रही है ।

ध्वनि ज्ञान सिद्धान्त अकाट्य है तो प्रभाव कैसे अंध विश्वास हो सकता है । प्रयोग विधि में व्यतिक्रम हेतु समालोचक बहुत उव्साहित हो जाते हैं ।

ध्वनि के माध्यम से देवत्व कल्पना

गण्डाबाजा के माध्यम से एक मानव शरीर में देवता आमन्त्रण विधि कैसे संपन्न होता है विचार करेंगे । देवता आर्विर्भाव से लेकर तिरोभाव तक षोलह प्रकार प्रक्रियाओं से गुजरना होता है । उसी प्रकार गण्डाबाजा में भी प्रत्येक विभाग के लिए एक ध्वन्यात्मक गुण को सुचिंतित धारा में संयोजित करके षोलह प्रकार पार या ताल निर्द्धारित हैं । स्वतः मन में प्रश्न जाग्रत होगा कि षोलह ही क्यों ।

षोलह संख्या की महानता केवल लोकधारा में प्रचलित ऐसा नहीं । यह षोलह संख्या मार्गीधारा में बार बार प्रयोग में आया है । बार बार वेदों पुराणों में षोलह संख्या का प्रशस्ति गान करते आये हैं ।

महर्षि दयानन्द के मतानुसार षोडश संस्कार

१. गर्भधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नाम करण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्रासन, ८. चुडाकर्म, ९. कर्णवेध, १०. उपनयन, ११. वेदारम्भ, १२. समावर्तन, १३. विवाह, १४. वानप्रस्थ, १५. सन्यास, १६. अंत्येष्टि

षोडश पचार पूजा विधान कर्मकाण्ड शास्त्र कहते

१. आसन, २. स्वागत, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमन, ६. मधुपर्क (आचमन), ७. स्नान, ८. वस्त्र, ९. आभूषण, १०. गन्ध ११. पुष्प, १२. धूप, १३. दीप, १४. न्यैवेद्य, १५. आरत्रक, १६. प्रदक्षिण पुष्पाञ्जलि ।

षोडश मातृका

गौरी, पद्मा, सची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातरो, लोक मातरः ॥

धृति, पुष्टि, तुष्टिरात्मनः कूल देवता, गणेशेनाधिका, होता, बृद्धौ, पुज्याश्च षोडशः

उसी प्रकार कोशलांचल लोकधारा में भी षोडश की संख्या मान्यता पुरातन युग से ही है। जैसे रात को षोलह 'घड़ि' माना गया है। जैसे ; विवाह उपयोगी षाड़शी कन्या के (सुल बएसी टुकेल)(कोशली भाषा मे) सुलह हात कपटा या षोलह हाथ की साढ़ी अनेक प्रकार उपमा लोकाचार मे प्रचलित हैं।

मुख्यतः मानव शरीर में देवत्व प्राप्ति या ध्वनि माध्यम से परम सत्ता के साथ एकाकार हो जाने की क्रिया संपादित होती है। गण्डा बाजा में सुलह भरनी या शोलह प्रकार के वाद्य छन्द आध्यात्मिक चेतना का मुख्य आधार होते हैं।

अन्य एक दृष्टान्त कोशलांचल में 'दण्ड' के नाम से एक कठिन साधना के अन्तर्गत आदिवासी तथा दलित पतीत संप्रदाय की जीवनचर्या परिवेशित होती है। एक रंगारंग सांस्कृतिक गीत, वाद्य, नृत्य, त्रिधारा, मे यह संपूर्णतः उपासना धर्मी है शिवो परिवार। यह 'दण्ड' उपासना का उपास्य देवता महादेव सायं काल प्रथम प्रहर स्वयं ताण्डव नृत्य करते उसको 'परभा' नृत्य कहा जाता है। यह नृत्य शिव भगवान का ताण्डव नृत्य है। यह नृत्य मे कार्तिकेश्वर, गणेश, माता पार्वति भी सामिल होते हैं। यह नृत्य, गीत तथा अभिनय सहित नृत्य है। केवल ढोल के माध्यम से यह नृत्य होता है। इसी लिए यह ताण्डव नृत्य संध्या ताण्डव नादान्त ताण्डव, तथा आनन्द ताण्डव इस त्रिधारा में समापित होता हैं। आद्य से अन्त तक ढोल (एकक) में षोडश प्रकार पार या ताल बजते हैं जिस के सहारे पद चालना में अनेक प्रकार छन्दोमय हो कर वृत्त, अर्द्धवृत्त, लंप, बएठि के साथ विभिन्न लय युक्त होता है, ढोल के शोडश प्रकार वाद्यों के नाम 'शुलहखाडी' या शोडश शाखा हैं।

संख्या तो षोडश पर १. भरनी २. खाडि के नामानुसार अन्तर भी दिखाई देता है। भरनी का अर्थ है आहात नाद से अनहात में भरण करना या पुरण करना। परभा नृत्य में और एक सांस्कृतिक बृक्ष की प्रशाखा यानि खाडि होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि, भिन्न भिन्न उपासना धर्म पथ पर वाद्य का उपयोग तय है। उपासना मार्ग परिवर्तन के साथ पार या ताल का नाम भी परिवर्तित हो जाता है।

षोलह भरनी

उपास्य देवता को मानव शरीर में अवतरण कराने के लिए उपासना के साथ साथ पार या 'ताल' भी सामिल किया गया है। यह बाद्य शृंखला सुलह भरनी क्रमानुशर- १.

भरनी, २. रासनी, ३. मंजमरा, ४.भेलकि, ५. आबाहन, ६. बेजिभरा, ७. अंगखेला, ८. उदंड, ९. शिखाबंधा, १०.अभिषेक, ११. देबता चढ़ा, १२. उभा, १३. चकरमरा, १४. चकरकेलि, १५.उरपेन, १६. छिडेन या पहुड ।

(वर्तमान जिला बलांगिर का एक उपखंड) पुरातन पतन गड या चैहान बंश का स्थापित राजधानी पाटणागड़ राज्य की इष्ट देवी माँ पाटनेश्वरी के सेवक तथा ढुलिआ एका नाग मत व्यक्त करते हैं कि, प्रथम आदि घात (यह बाद्ययंत्रका पुजन उपरात कुछ निर्धारित 'पार' समुहोंको बजाया जाता है) द्वितीय 'पथेई' अर्थात पथदेवी के नाम से, तृतीय 'मंगला' अर्थात मंगलमयी माता के नाम से कुछ आलंकारिक पार बजाने के बाद सोलह भरनी बाद्य शृंखला बजायी जाती है । उसी तरह बलांगिर, देओगाँ ब्लॉक, जरासिंहा पाटखंडा देवी का परम सेवक पूर्वतन जमींदार स्वर्गत पर्शुराम जी के मतानुसार -

१. भरनी, २.रासनी, ३.मंचमरा, ४.भेलकि, ५. आबाहनी, ६. बेजिभरा,७. अंगखेला, ८.उदण्ड, ९.शिखाबन्ध, १०.अभिशेक, ११. रसाकेश या देबता चढा, १२.उभा,१३.चकरकेलि, १४.केरमरा, १५.उरघेन, १६.छिडेन

(बलांगीर लोक महावसव २०११ स्मरणिका पू ३६) गरुजी ड.दोलगोबिंद बिशि, लिखते हैं नाम करण में सामान्य विभेद हैं परन्तु उद्येश्य गण्डाबाजा के जरिये १६ प्रकार वाद्य या पार के साथ मानविक मन चेतन पर प्रभाव डालने के लिए गंभीर चिन्तन करते थे फल भी मिलता था ।

उपसंहार - अध्यात्म बिचार केवल मात्र अदृश्य शक्ति के ऊपर प्रगाढ़ विश्वास और शब्द माध्यम से प्रकृति पर समर्पित होना है ।

पश्चिम औडिशा में प्रत्येक गाँवों में कोई ना कोई देवी पूजित होते हैं । जैसे- ग्रामदेवी, बनदेवी, जलदेवी, पथदेवी या पथेई, गड देवी, राज्य देवी, डंगर वुढा, (पर्वत) देवता, समलेई, पाटनेश्वरी, मानिकेशरी, सुरसुरी, माहेशरी, चँपा तलेन, नगरेन, घसिएन, हिरा सागरेन, डंगेई, डालखाई, मेटाकानि, सँतेई, कुशंगेई, चरदेई, लँकेशरी, भीमाबूढ़ा, लाँतबूढ़ा, कलासि, निशि देवी, पाटखँड़ा, चार प्रकार मँगला, घँण्टासुनी, महुल तलेन, डालतलेन, टाँगरेन, मालेश्वरी, बख्त्रेन, बुचाकना इत्यदि । इसके साथ अपनी अपनी जाति परिवार की प्रथा अनुसार स्वतन्त्र रूप से एक एक नाम से एक एक देवा देवी का पूजन किया जाता है । अदिवासी परंपरा में मुख्यतः ६४ प्रकार देवा देवी का पूजन किया जाता है । इन सब देवी देवता पूजन, आराधना में गण्डा बाजा होना अनिवार्य है तथा हर देवी देवताओं का एक एक स्वतन्त्र 'पार' या 'ताल' है ।

भारतीय प्रचीन संस्कृति आदिवासी संस्कृति है । आदिवासी देवी देवता एवं आदिवासी परिवार का परिचय उपरोक्त इन सबकी समस्त कार्यों में गंडाबाजा का व्यवहार होना आश्चर्य का विषय तथा सभी प्रकार जाति प्रजाति की सर्वविध कार्य के लिये इतने सारे 'पार' या 'ताल' का निर्माण करना तथा परिवेषण कर जन मनोरंजन करना चकित कर देता है ।

सभी देवी देवताओं की आराधना पूजा उक्सवादि में षोलह भरनी बजना एकान्त प्रयोजन है ।

उपासना में गण्डाबाजा का व्यवहार करण

ध्वनि को महत्व देना, उसका पूर्ण रूप जानकर समझकर समयानुसार स्वतन्त्र छन्द युक्त कर एक निर्दिष्ट धारा में विभागीकरण करके गुरु लघु प्रति ध्यान देना गण्डाबाजा का तथा कलाकारों का विशेषत्व है । प्राचीन सभ्यता से चली आ रही यह परंपरा अन्यत्र विरल है ।

अष्टांग योग सूत्र में वर्णित चक्रों को शक्ति प्रदान करने में ध्यान धारणा के मध्यम से अनाहात ध्वनि को अनुभव करने की बात लिपिबद्ध है वेमें रचना काल से पूर्व मानव अपने विकाश क्रम के साथ अपनी अनुभूति के आधार पर शरीर में देवत्व का अनुसन्धान करते आया है । उसने अपने आंतरिक देवत्व शक्ति को आनाहात और आहात दोनों ध्वनियों के सहारे वृद्धि करने का प्रयास किया साधन किया, फल स्वरूप शब्द विन्दु को अनुभव कर परम आनन्द प्राप्त किया । शास्त्र भी कहते हैं स्वहं तथा जो पिण्ड में नहीं वह ब्रह्माण्ड में नहीं । अन्यथा इस विषय पर सिद्धान्त स्थिर करने के लिए मिमांसा शास्त्र शब्द, सत्ता और बिज्ञान पर इतना गुरुत्व नहीं देते ।

ऐसे एक वैज्ञानिक तत्व का दूर से अन्दाज कर या अन्य किसी प्रक्रिया के साथ तुलना करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सही नहीं होगा । एकाग्र अवस्था में ध्यानस्थ स्थितप्रज्ञ हो आसन में बैठना होगा । क्रमान्वय रूप से ध्वनि परिवर्तन का प्रभाव मानव शरीर पर होना निश्चित है । उसे को स्वयं अनुभव करना होगा ।

परंपरागत पर्व को पूजा के माध्यम से मानव और देवता को एक सूत्र में बान्ध रखने का कौशल कोशलांचल

में गण्डा बाजा के माध्यम से जा रि रखना एक विशेष गुण है ।

इस गण्डा बाजा का पाँच प्रकार भिन्न ध्वनियों के मिश्रण से, एकोनाद या एकस्वर के ध्वनि प्रवाह प्रकृति के साथ घनिष्ठ संपर्क है । शुद्ध चित्त मानव द्वारा निराडंबर पूजा

और आवाज ध्वनि द्वारा होने वाले ध्वनि गुण का निरन्तर मन्थन करते हुए उसका सोध कार्य बैज्ञानिक धारा में करने का आमन्त्रण है ।

उपसंहार : आविष्कार के युग में नये नये आविष्कार होना स्वाभाविक हैं । हम सभिजन पुरातन से नूतनता की ओर अग्रसर होने के कारण अनेक सफलता प्राप्त हुई हैं । परन्तु हमारे आदि परंपरा तथा पौराणिक प्रथा को किस आधार पर अपनी आँख बन्द कर अंध बिश्वास या कुसंस्कार का आरोप लगाते है । क्या बिना किसी सिध्दांत के किसी भी परंपरा का हमारे पुर्वजों ने पालन किया ? हाँ साधन के लिये उपयुक्त साधक, साधना क्षेत्र तथा धार्मिक प्रोव्साहन अभाव हेतु प्रोव्साहन में कहीं कहीं नटकीय मालूम होता है । परन्तु प्रथा कदापि अन्ध नहीं हो सकती । यह गम्भीर बिचारणीय विषय है । वर्तमान की शिक्षा सभ्यता के नाम से हम भक्त वर्ग का इसप्रथा को हतादर करना कहीं कहीं विचार गत शुन्यता का निर्देश करता है । केवल साहित्यिक, संगीतकार या किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के द्वारा इस ध्वनि विज्ञान को प्रमाणित करना असम्भव है । इसीलिए अत्याधुनिक यन्त्र तथा धुरीण बैज्ञानिक गोष्ठी द्वारा ध्वनि गुण और मानव शरीर में उसके प्रभाव का अनुसन्धान आशा रखते हैं । क्योंकि यह एक गहरे सोच और अध्ययन का बिषय है ।

गंडा बाजा में लोक तत्व

लोक शब्द सर्व कालीन है । लोक धारा और मार्ग धारा दो विभागों में बँट जाने से यह विवाद या तर्क उत्पन्न हुआ ।

मार्ग देशी बिभेदेन संगीतं भवति द्विधा

मार्गश्रीतं तु संगीतं स्वर्गे भुरी प्रयोगभावा

जगज्जन मनोहारी देशी संगीतं मुच्यते ॥ (नाटय मनोरमा शोक सं १५)

संगीत दो विभागों में बाटा गया १.मार्ग, २.देशी । स्वर्ग में मार्ग संगीत और जगत अर्थात् पृथ्वीवी में मन मोह लेने वाला संगीत देशी ।

यह सिद्ध है मर्त्य लोक में वेद रचना के पहले संगीत था । नहीं तो संगीत वेदों में बार बार मार्ग ओर देशी का नाम उच्चारित नहीं होता । यह भी स्वीकारा गया है देशी संगीत मन को मोह लेती है ।

‘लोक’ शब्द का विचार किया जाए तो मार्ग शब्द होना चाहिये ।

ईश्वर वर्णना में

सर्व लोकेक नाथ

लोका समस्ता सुखीनो भवन्तु ।

और अनेक प्रमाण है जहाँ लोक शब्द शास्त्रीय या मार्गी शब्द है । लोक लोक मे भी अन्तर रखा गया, साधारण लोक, देव लोक मर्त्य लोक, फिर सांगीतिक क्षेत्र में लोक शब्द मार्ग से क्यों अलग से विचार किया गया आलोचना तर्क का विषय है ।

लोक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है । विकशित भारत वर्ष की संपदा केवल मात्र वन पर्वत नदी झरना, पेड़ पौधे, पशु-पक्षी, प्रकृति और मानव है । दुसरे जीवों से मानव स्वतन्त्र है । इसीलिये विभिन्न प्रकार शब्द, ध्वनि, तरंग आदि श्रवण करने के पश्चात मन्थन सोधन में बहुत समय लग गया पर सफल हुआ । शरीर के लिए जैसे खाद्य चाहिये वैसे मन के लिए शृष्टि का समस्त जड़ चेतन जीवों से शब्द अनुकरण कर प्रतिशब्द का समस्त जड़ चेतन जीवी से शब्द अनुकरण कर प्रतिशब्द एक एक बाद्य यन्त्र तैयार किया । काल का प्रकार स्मरण कर विभिन्न लयों में प्रतिशब्द शृष्टि करने में सफल हुआ । इच्छानुसार वह ध्वनि समूह को बजाने लगा, प्रकृति की गति जैसे हाथ-पैर हिलाने लगा पशु पक्षी के स्वर आदि उच्चारण कर भाषा, भाषा से गीत, नृत्य वाद्य शृष्टि कर आनन्द विभोर हुआ ।

लोक तत्व भी आवर्तन विवर्तन चक्र में घूरते घूरते जीवन धारण प्रणाली में सुधार लाया । संस्कार दिया । एकक से गोष्ठि, परिवार, राज्य के हित में विनियोग किया । धीरे धीरे गीतों के भाव, नृत्य में अंग चलना और वाद्यों में छन्द जैसी सूक्ष्म धारा का आविष्कार किया । प्रभाव को ग्रहण किया क्रियाशील हो उठा अनेकानेक कार्यों में व्यवहार करने लगा । पुनः अध्यात्म (उपासना धर्म) समाजिक, मनोरंजन सर्वोपरि अर्थ नीति में विनियोग कर सामूहिक स्वीकृति प्राप्त हुआ ।

लोक तत्व लोकधारा में परिवर्तन हो गया ऐसा कौनसा विभाग नहीं हैं जिसे कि मार्ग से अनुव्रत माना जाएगा ।

लोकधारा में भी ताल, लय, स्वर, अल्पत्व, बहुलत्व, उतार, चढ़ाव, अर्थात्, आरोह, अवरोह है ।

वाद्यो का छन्द, नृत्य मे अंग क्रिया सौन्दर्य बोध, रस, भव सभी तो हैं । केवल मात्र लिपि नहीं हैं । मार्ग से तुलना किया जाए तो वेद की लिपि भी नहीं थी । केवल मात्र श्रवणेन्द्रिय के सहारे प्रचलित होता था । इसीलिये शास्त्रकार पण्डितों ने वेद का अन्य नाम श्रुति रखे हैं । वरं लोक धारा में एक विचक्षण गुण देखने को मिलता है । बह परिवेश परिस्थिति अनुशार भाव, रस, गति, प्रगति छन्द स्वतन्त्र होना स्वाभाविक है । इसलिए प्रकृति के साथ भावानुशार अपना विचार प्रकट करने की छूट थी । श्रुति में भारत वर्ष का परिचय केवल मात्र लोक तत्व के आधार पर हुआ था । बहा लोक धारा उस वक्त भी था, अभी है आगे भी रहेगा ।

किम्बदन्ति

भारत के मूल निवासी या आदिवासियों ने पाँच वाद्यों का व्यवहार किया है । इस विषय पर आदिवासी संप्रदाय से साक्षात्कार से पता चला कि प्रायतः पश्चिम ओडिशा में ६४ प्रकार के आदिवासी हैं और हर विषय पर एक एक देवी देवताओं की आराधना करते हैं । भूमि दुंदुभि का उद्भावन होने हेतु उनका हर उपासना में घर, आँगन में भूमि दुंदुभि का प्रतीक निषान झुला के रखते हैं । जहाँ कहीं प्रकृति देवता का पूजन किया जाता वहाँ पंच भूत से आविष्कृत पंचवाद्य होना अनिवार्य है । आदिवासियों के द्वारा उनके देव स्थापित स्थलों में गंडा बाजा की भी स्थापना की गयी है । इसे देव तुल्य माना गया है । अभी भी हर देवी मन्दिर में पंच वाद्य या गण्डा वाजा स्थानित है ।

मानव जन्म लेने के पूर्व से ही अपने देवी देवता की कृपा समझकर गण्डा बाजा के साथ बलि समर्पण किया जाता है । आश्चर्य का विषय है कि हर देवी देवताओं की मानव के क्रम

विकाश के नाम से जुड़ा है। जैसे टोकी परव, बुहासेन, बुढी, बुढा प्राय यह तो लौकिक नाम हैं। श्रीक्षेत्र जगनाथ की यात्रा में ढोल का प्रचलन था। आज भी पंचमी के दिन माता महालक्ष्मी अपना अभिमान प्रकट कर भगवान श्री जगन्नाथ यात्रा के लिये जिस रथ में अपनी मौसी के घर गये उस रथ को तोडने के लिए ढोल आदि पुरातन बाजा बजाकर जाती हैं। इसे से बडी किंबदंति क्या हो सकती है।

श्री श्री जगन्नाथ सगिदो से जगदो गजन्नाथ होकर श्री मन्दिर पुरी में बिराज मान है। इनकी नित्य आराधना साबर संस्कृति से पूजन किया जाता है। इसके बारे में और दृष्टान्त देना शोभनीय नहीं होगा। विधी सिद्धान्त के लिये श्री मन्दिर का एक स्वतन्त्र इतिहास मादलापांजी के नाम से लिखना जारी है।

केवल ओडिशा, पश्चिम या कोशलांचल क्यों ?

भारत बर्ष के सभी प्रान्तों में आदि परंपरा को स्वीकारा है। गण्डा बाजा की तरह एक न एक वाद्य प्रयोग होता आ रहा है। कहीं लिपिबद्ध है तो कहीं श्रुति माध्यम से पुरातन युग से चलते आया है। आदिवासी चारुकला, प्रस्तर मन्दिर मे आदिवासी संस्कृति की झलक के लिये ही समग्र भारत में ओडिशा का एक स्वतंत्र परिचय है।

गण्डा बाजा के बारे में प्रायतः : इस लेख में सम्यक धारणा दी गयी है। इस लोक वाद्य के नाम से जाने जाने वाले वाद्यों के बारे में विस्तार रूप से लोक धारा शास्त्रीय धारा का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहुंगा। अब कुछ विद्वानों के मतानुसार कुछ तथ्यों का अवतरण करने का प्रयास करता हूँ।

अड़िशा के बलांगिर जिला और सोनपुर जिला, बरगड जिला, के कुछ गाँव जो पुरुषानुक्रम से गण्डा बाजा बजाते आ रहे हैं और क्षेत्र परिदर्शन कर गण्डाबाजा के कुछ प्रमुख धूरीण कलाकारों से साक्षात किया। उनके मुख से सुना, प्रत्यक्ष रूप से बजाये इन सबका चलचित्र उत्तोलन किया तब जाकर कुछ पुरातन तथ्य हस्तगत हुए।

गंडा बाजा में मागी' दर्शन

पश्चिम ओडिशा या कोशलांचल का आदिबाद्य गंडाबाजा का निद्धारण कितना प्रचीन है इसकी समय सीमा का निर्धारण संभव नहीं हो पाया है। इस आदिवाद्य के समय की गति कई यूगों के साथ ताल देकर आगे बढ़ चुकी है। जिस मनुष्य ने इस पंचवाद्य को पंचभूत के प्रतिरूप के रूप में आविष्कार कर पंचभूत तथा जड़ चेतन के बीच समता स्थापित करने में समर्थ हुआ। (जिसे का भय निवारण प्रयोग करता था) बाद में उसे वार्ता प्रेरण की सांकेतिक ध्वनि के माध्यम से प्रेरण करने में सफल हुआ। धीरे धीरे प्रस्तर युग से पौराणिक युग तक प्रवेश कर भारत के क्रम विकाश के साथ साथ गंडा बाजा का विकाश करने में भी समर्थ हुआ है। इसने सरल, निष्कपट लोगों के मन को तो छूआ ही है साथ साथ ज्ञानी, पंडित तथा उच्च वर्ग के लोगों के लिए अनुसंधान का विषय बना है। व्यक्तिगत आनंद से गोष्ठि, गाँव, सहर तथा बालक से वृद्ध सबके हृदय में इसे एक विशेष अधिकार प्राप्त हो चुका है, गंडा बाजा को जातीय परंपरा की मान्यता मिल चुकी है।

इस गंडा बजा की इतनी सारी गौरव गाथाएँ पूर्व आलोचना के माध्यम से उद्गम से विकाश एवं सर्वजन स्वीकृति के संवध में शुन्य वाद से ब्रह्मनीरूपण शब्द, ध्वनि, कंपन ऐसे कई तुलनात्मक तथ्य प्रस्तुत किए गये हैं। गंडा बजा को लोकधारा के अंतर्गत एक परंपरा की मान्यता मिली है। परंतु किसी भी विषय की देख-भाल तथा संरचना के लिए अगर कोई व्यवस्था न हो तोहार-हजार बर्षों तक उसका धारा वाहिक रूप से टिका रहना असंभव है। तो गंडा बजा में मार्ग धारा नहीं है कहना कितने दुर तक उचित है ?

समुद्र मंथन से 'पणब' (ढोल) और 'मृदंग' की उत्पत्ति शास्त्र सम्मत है। मृदंग से पखावज पखावज स तबला की उत्पत्ति संभव है। एवं उसी बादय मे स्थित मार्ग को गुपीजन धुरीण ब्यक्तियों के संस्कार के निजस्व कारण जन साधारण के लिए एक मार्ग धारा लिपि शास्त्र वन पायी है। तो उसी लोकधारा में अबतक प्रचलित गंडा बजा का निजस्व मार्ग उसी गुणी धुरीण ब्यक्तियों की अपेक्षा करना स्वभाविक है। अतः : गंडा बाजा में स्थित मार्ग क्या है एवं विना लिपि शास्त्र के केवल मात्र पुर्वजो के माध्यम से कैसे अगली पीढी तक प्रसारित हुआ है ? यही गवेषणा का विषय है।

मार्गधारा किसे कहा जाता है ?

साधारण अर्थ में स्थूल, सूक्ष्म प्रतिध्वनि तरंग के साथ विभिन्न गति, समय, त्रिकाल प्रयोग, वस्तु को संकुचित करने की व्यवस्था तथा हृदय में उत्पन्न ध्वनि गुणों के अनुसार भावों को उसी ध्वनि के माध्यम से कल्पना को वास्तव रूप में प्रकाशित करने की संभावना आदि के साथ उपयुक्त शिक्षा प्रदान के लिए व्यवस्थित होना अनिवार्य है। ऐसे मार्ग शास्त्रों में और कई सूक्ष्म विषय हैं। जिनमें प्रकृति, पुरुष, जनमन, पशु पक्षियों को वश में करके आनंद के सर्वोच्च स्थान पर पहचाने की क्षमता होती है।

गंडाबाजा निश्चित रूप से एक लोक धारा है। किंतु भारत में साधारण रूप से जिन दो भागी धारा

का प्रचलन देखने को मिलता है वे है -

क) हिंदूस्तानी या उत्तर भारतीय पद्धति ।

ख) खर्णाटक या दक्षिण भारत पद्धति ।

गंडा बाजा चाहे दोनो पद्धतियों के समतूल्य न हो फिरभी गंडाबाजा में स्थित निजस्व मार्ग धारा में जो गुण भरे हुए हैं। उसे देशज मार्ग कहा जा सकता है। इसी वाद्य ध्वनि मिश्रण एवं परिचालना प्रणाली में उन्नत ज्ञान कौशल है। अतः गंडा बाजा एवं उससे संबंधित समस्त दिशाओं की संपूर्ण आलोचना के बाद यह प्रमाणित हो जाएगा कि बहुत प्राचीन काल से कोशलांचल में एक स्वतंत्र देशज मार्ग प्रचलित होती आ रही है। यह भी आशा की जा सकती है कि भारत में प्रचलित इन दो मार्गों के अलावा और एक मार्गधारा संयुक्त होकर उसमें अन्यत्र भारत के यशोगान के साथ गौरव बृद्धि हो सकेगी।

चतुर्थ पर्याय की आलोचना अधिक स्पष्ट करने के लिए पूर्व उपस्थापित तीनों आलोचनाओं को पुनः स्थानित करना सही रहेगा।

अनुसंधान के लिए जो लिखित प्रस्ताव दिया गया था वह इस अंतिम पर्याय की आलोचना में क्रमानुसार अवतरित किया जा रहा है।

महाशुन्य च शुन्य च शब्द संभव ।

स शब्दप्तोक्त : स्थूल बीजार्ध मात्रक : ॥

स्थुलं च मंडलाकारं बीज ब्रह्म प्रशश्यते ।

माता भुतादि विज्ञेयमिति संगीत संभवाः ॥

इसी कारण पूर्व सुरी गण प्राकृतिक परिवेश में जी कर बढ़ने में अभ्यस्त रहकर नित्य व्यवहृत विषयों पर शब्द की महिमा को सही तरह से समझा था। अतः प्रकृति से जात विभिन्न शब्द ध्वनियों को सुन अत्मसात कर कल्पना जगत में डूबे रहते थे। दूरस्थ स्थानों को संवाद प्रेरण, सतर्कता सूचक सूचना जैसे कि शरीर के लिए खाद्य आवश्यक उसी प्रकार मन के लिए ध्वनि के माध्यम से सूराक की व्यवस्था में गुरुत्वारोप किया था। क्रमसः एकक अनुसंधान, गोष्ठी अनुसंधान को मान्यता देने में कुंठा प्रदर्शित नहीं किया था। जिसके फल स्वरूप ध्वनि साधना में विकाश की संभावना दिखाई पड़ी।

आदि परंपरा के साथ आदिवासी और अधिवासी छत्ती पाटक जाति समूह अपने अपने कुल की नीतियों के अनुसार विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करते थे। वे समाजिक कर्मों में आध्यात्मिक धारा, मनोरंजन के क्षेत्र में अध्यात्म तथा सामाजिक विधियों में भिन्न भिन्न रसों के प्रयोग पर गुरुत्व देते थे। इसी कारण इस सामाजिक धारा में गंडा बाजा को उस समय का एक मात्र ध्वनि विज्ञानी दल माना जा रहा था। अतः जन समूहों की माँगों के अनुसार देशी गंडाबाजा कलाकारों ने विभिन्न रसोत्पादन स्थलों के आविष्कार का प्रयत्न किया।

उस छंद युक्त अल्पत्व बहुलत्व ध्वनि के एक विशिष्ट समय सीमा में प्रयोग को सरल तथा मधुर करने के उद्देश्य से 'पार' या 'ताल' का आविष्कार हुआ। साथ ही लोगों ने स्वीकार भी किया। धीरे धीरे इसने एक परंपरा का रूप ले लिया।

सामूहिक पर्व, कूल प्रथा के अनुसार पारिवारिक पूजाओं तथा उत्सवादि में इस 'पार' या ताल

परंपरा का समावेश हुआ। गंडा बाजा के बिना सभी कर्मों को अधुरे माने जाने के कारण गंडा बाजा कलाकारों का परिवेश तथा समाज के मंगल के लिए गंडा बाजा बजाने के साथ साथ स्वतः उनके लिए अर्थोपार्जन का एक मार्ग भी खुल गया। इस गोष्ठी ने आनेवाले समय में युद्ध से पहले वीर वाद्य के द्वारा योद्धाओं के मन में उन्माद उत्पन्न करने की दक्षता हासिल करके खुद को शासन के साथ सामिल कर ली। क्रमानुसार इस गंडा बाजा को व्यक्ति, गोष्ठी, गाँव तथा सहर से उर्ध्व में एक लोक कला की मान्यता मिली। हर ममुहों ने इसे निःसंकोच स्वीकार कर लिया।

इतना सब होने के लिए वानराकृत मानव से प्राचीन प्रस्तर युग, मध्य प्रस्तर युग, नूतन प्रस्तर युग के विवर्तन चक्र में चक्कर लगाते हुए एक निर्धीष्ट धारा की शृष्टि करने के लिए, जीवन में ध्वनि की आवश्यकता तथा उसके संस्कार के लिए इस मानव जाति का जीवन कठिन साधना में अतिवाहित हुआ। प्रश्न यह उठता है कि बिना नियम तथा परंपरा में बंधे किसी भी ध्वनि का प्रयोग मन चेतन के ऊपर सकारात्मक प्रभाव नहीं डाल सकता। अतः एक निर्दिष्ट धारा का होना अविश्वसनीय नहीं हो सकता। यह विषय केवल एक विस्तरित आलोचना की अपेक्षा करता है।

मार्ग धारा का अनुसंधान क्यों ?

इस कोशलांचल या पश्चिमांचल का गंडा बाजा के नजाने कितने युगों तक कितने प्रकार के घातों प्रतिघातों से गुजरते हुए अपने अस्तित्व को बरकरार रखने में सफल हो पाने का कारण क्या हो सकता है ? हर किसी के मन में यह प्रश्न आना स्वभाविक है। द्वितीयतः प्राचीन काल से बजता आ रहा गंडा बाजा केवल ऐसे ही बजाया जा रहा होगा ? अगर ऐसे ही बजाया जाता होगा तो आज के उच्च शिक्षित वैज्ञानिक युग के शिक्षित समाज में इतना आदर भाजन न होता। बल्कि इसे अपसंस्कृति या मन, चेतन, शरीर आदि के लिए अनुपयोगी मानकर त्याग कर दिया गया होता। यह गंडा बाजा और उसकी ध्वनि तथा छंद गुण के कारण विशेषतः केवल लोकधारा के अंतर्गत हुआ होता तो भारत की दूसरी लोक धारा संस्कृति की तरह कराल काल के गर्भ में अबतक लुप्त हो गया होता।

समस्त शास्त्रवितों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके हैं कि मार्ग संगीत देशज संगीत का एक संस्कारित रूप है। अब केवल पश्चिम ओडिशा में प्रचलित गंडाबाजा में नीहित छंद गुण का उद्धार और संरक्षण करने का समय है। अतीत में महान विद्वान संगीतज्ञों ने कहा था कि अतीत में भारत में ५९०० ताल व्यवहार में थे। अतः यह प्रश्न स्वतः आ जाता है कि उसके प्रयोग न होने का कारण क्या है ? इसके दो कारण हो सकते हैं, साधकों का अभाव या अल्प में संतुष्टि लाभ करना। बहुत समय तक कुछ विद्वान पंडितों की प्रचेष्टा से १२० तालों में संगीत परिवेशित किया जा रहा था। किंतु इस अत्याधुनिक युग में केवल १६ तालों या इससे भी कम तालों का प्रचलन है।

इस तथ्य से यह देखा गया कि कारण चाहे श्रोता – दर्शकों की रूचि हो या गुरु शिष्य परंपरा में व्याधात जो भी हो धीरे धीरे संगीत में तालों की संख्या संकुचित होती जा रही है। फिर भी भारत में कला संस्कृति का विलय नहीं हुआ है। कोई भी साधना कोलाहल में संभव नहीं होती। एकांत साधन के लिए प्राकृतिक परिवेश सर्वोत्कृष्ट होता है। निर्दिष्ट विषय साधना की सिद्धि में अगर प्राकृतिक परिवेश सहायक हो सकता है। पुरुषानुक्रम से प्रकृति की गोद में पल बढ़ रहे पश्चिम ओडिशा के जन समूह पूर्ण

मात्रा में महाजागतिक संगीत से देशज तथा देशजसंगीत से मार्ग अनुसंधान कर निजस्व परंपरा में गुरु-शिष्य परंपरा के आश्रय में संगीत साधना में सिद्धहस्त होना स्वभाविक ।

किस गुण के कारण यह परंपरा में रूपांतरण हुआ है ?

यह प्राचीन आदि संगीत धारा विशाल जन समूहों की स्वीकृति के कारण ही आज तक बची हुई है । कई पार (ताल) बच गये हैं । कई विस्मृति के गर्भ में लीन होकर भी आज पुनः उद्धार से उनमें नूतन जीवन संचारण आरंभ हो गया है । संग्रह के क्षेत्र में कई वाधाओं के होते हुए भी एक नूतन मार्ग उद्घाटन की संभावना की आशा रखकर प्रचेष्टा जारी है ।

अन्य वर्गों के कलाकार गंडा बाजा के अंतर्नीहित गुणों के प्रति आकृष्ट होकर, प्रदर्शन के नाम पर अल्प कुछ छंदों को लिया है । इसके कारण मूल धारा की अधिक क्षति हुई है । मंच प्रदर्शन कला एक मनोरंजन धर्मी तथा अल्प समय में समर्पित होने वाली कला है । साथ ही रूप सज्जा और चकाचौंछ में घीरे मंच कलाकार अपनी कला को लोकहीन करने के लिए वाद्य छंदों का मिश्रण या समागम करते हैं । जिससे यह कर्ण और चक्षु को आकर्षित कर पाते हैं । मंच सज्जा, सौंदर्यबोध मंच परिवेशण कला लोकप्रिय हुई । सर्व साधारण तथा पृष्ठ पोषक प्रशासन से मंच कलाकारों को प्रोत्साहन मिला । वे धन-मन के अधिकारी हुए । परंतु दूसरी ओर गुण युक्त होते हुए भी वास्तविक कलाकार कला को सौंदर्य तथा लोभनीय रूप न दे पाने के कारण उन्हें प्रोत्साहन का भी अभाव रहा । एवं प्रोत्साहन न मिलने के कारण यह जन मानस से दूर होती गयी । यहाँतक कि उत्सव, त्योहारों, विवाहों तथा राजकीय मनोरंजन के क्षेत्र में भी आधुनिक वाद्ययंत्रों की सहायता कर उसे मनोरंजन कला के रूप में स्वीकार किया गया । इसी कारण कौलिक वृत्ति में व्यस्त रहकर मंगल सेवा – करने वाली गंधर्व (गंडा) जाति अर्थिक अभाव का शिकार होकर दूसरे देशों या राज्यों को दादन श्रमिक बनकर जाने लगे । किसी अंधेरी गुमनाम गली में खो गया आदि काल का वास्तवधर्मी गंडा बाजा यंत्र, पंचवाद्य

पूर्वालोकना से गहराई से चिंतन करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व अतीत में भारतवर्ष में प्रचलित असंख्य ताल के अनेक अंश पुराण वार्णित इस कोशलांचल के गंधर्वों (गंडा) के द्वारा संचित थे । उस दिशा में उनके दक्ष, पारंगम होने के कारण वे समाज के मंगल के लिए इसका विनियोग करते थे । समय के साथ कई तालों का विलय भी हो चुका है । जितना बचा है उतना भी अगर संगृहीत तथा संचय करके रखा जा सके तो एक महान सांस्कृतिक परंपरा को पतन होने से रोका जा सकता है । अतीत में दृष्टि रक्षण के निमित्त ध्वनि के माध्यम से पुनः गंधर्व वाद्य गंडा बाजा अपना कर्तव्य संपादित कर समाज के हित में लग सकता है ।

क्यों दूढ़ रहे हैं ?

कभी पथ प्रांत तो और कभी मठ मंदिर, कभी सामंतवाद के दरवार के विलास में या वन, पर्वत, झरना के किनारे आदिवासी जनजाति के कठिन परिश्रम लाघव हेतु धारा विहीन, अशुखलित संगीत को अतीत के महान ध्वनि शास्त्रज्ञ भरत मुनी से शुरू करके भातखंडे, पल्लूस्कर, भेंकटेश्वर जैसे अनेक विद्वान संगीतज्ञों ने संग्रह कर कई शास्त्रों की रचना कर दी । उन्हीं संगीत शास्त्रों के द्वारा संसार में भारत

की मर्यादा द्विगुणित हो गयी। अगली पीढ़ी इन शास्त्रों का अनुसरण करके आगे बढ़ गयी है, विश्व में नाम कमाया है, भारत का सम्मान बढ़ाया है।

इतना होने पर भी शास्त्रकारों के लिए सूक्ष्म ध्वनि संपन्न संगीत को आविष्कार संस्था के लिए सुविधाजनक होने के कारण शास्त्र में भी दो भागों में बाँट दिया गया है : १- देशी, २-मार्गी। मार्गी लिपि युक्त होने के कारण बारंबार मंथन की सुविधा हुई। अनेक तर्क, आलोचना, पर्यालोचना हुई। उन्नति का मार्ग उन्मुक्त हुआ, प्रचारित प्रसारित हुआ। गुरु आश्रम से विद्यालय, महाविद्यालय तक की सुविधा उपलब्ध हुई। ऐसे कि विज्ञ पंडित उपाधियाँ प्रदान के लिए विश्व विद्यालय बनाए गए। परन्तु 'देशी' नाम धारण की हुई लोकधारा को समझना, हृदयंगम करना तथा साक्षात्कार के लिए गमनागमन कष्ट स्वीकार करने का समय लगता है काफी नहीं हुआ। अतः समय सूचना देते हुए शास्त्र मौन रह गया। आलोचित देशी संगीत का आधुनीकता के दबाव से निकलने के लिए छटपटाहट ही देखने को मिलता है। लोक धारा को एक कलंकित जगत में धकेल दिया गया पर क्षति सर्वसाधारण की हुई। आज केवल मात्र ५ पार या छंद को लेकर मंच परीक्षण कला रक्षणशील हो उठे हैं। परंतु संपूर्ण ज्ञान से भरा भंडार होकर भी ग्रामांचल लोकधारा के अंतर्गत कला व कलाकार अवहेलित हैं।

प्रचलित आदि परंपरा लोकधारा में बहुत सारे ज्ञान भरे पार या छंद हैं। जिसमें छंद या गीति छंद संयोग हो पाने पर शिष्टधारा का कलेवर की वृद्धि होना निश्चित है।

समाज में प्रत्येक काम के लिए जो पार या ताल है पहले उसके साम्यक संगृहित ताल समूह के बोल, विनियोग स्थल, काल, पात्र के रूपानुसार संयोजित पार में ताल मात्र निरूपण करने का ज्ञान।

ये सारे पार जिस धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कर्म में प्रयुक्त हो जाते हैं। कमानुसार पहले पार लिपि आदि का संग्रह किया गया।

धर्म :

धर्म के धारण तथा उसे सुरक्षा देने के लिए साधारणतः पारिवारिक तथा सामूहिक धारा में कुछ पथाओं या पारिवारिक धर्म में

(क) व्यवहृत हो रहा गंडा बाजा प्रायतः विवाह उत्सवों में पालित विभिन्न कर्मों में कुल देवी देवता ग्राम देवी सबसे पहले वर-वधु के ईश्वर - पार्वती के रूप में देखे जाने के कारण वह सब भी कौलिक धर्म के अंतर्गत आते हैं। अतः उन सभी कर्मों में प्रत्येक कर्म के लिए स्वतंत्र ताल या पार निर्धारित हुआ है। उसके बाद विभिन्न जाति कुल प्रथा भिन्न भिन्न होने के कारण पार या ताल भी स्वतंत्र होते हैं।

(ख) मनुष्य गर्भधारण से अंतेष्टि क्रिया तक जो सोलह संस्कार है वे सभी वर्गों के लिए भी स्वतंत्र पार निर्धारित हुए हैं।

सामूहिक धर्म संरक्षण में

(क) प्रत्येक पथप्रांत देवी देवता, ग्राम्य देवी, सहरदेवी, पथदेवता, वन देवता, पर्वत देवता, नदी जल देवता आदि के पूजन के लिए लोकधारा में एक स्वतंत्र परंपरा निर्धारित है। हर देवताओं के लिए एक मूल वाद्य छंद निर्धिष्ट होकर पूजन के समय सोलह विधिओं के अनुसार पूजा की जाती है।

(ख) मनुष्य शरीर में देवत्व आमंत्रण कर्म के षोडश विभाग निर्धारित है। एव प्रत्येक विभागों के लिए

स्वतंत्र षोलह छंद या पार निर्धारित हैं। वह पार या ताल 'भरणी' के नाम से जाना जाता है।

अर्थ : (क) यह बाजा अगर दूसरों के लिए निमंत्रित होता है तो दक्षिणा के रूप में इसका पारिश्रमिक दर निर्धारित होता है। अंग वस्त्र, आमंत्रित या कर्मरत रहने तक वद्य मंडली कलाकारों के भोजन तथा विश्राम के लिए स्वतंत्र जगह निर्धारित किया जाता है। अतीत में गंधर्व वाद्य कलाकार जाति को अष्पृश्य समझकर जन साधारण में रहने की उन्हें अनुमति न थी। उसी कारण उनके लिए जाति के अनुसार रहने की स्वतंत्र जगह की व्यवस्था की जाती थी। इसे सौभाग्य कह सकते हैं या जन चेतना जो भी हो आज वह कलंकित भेदभाव नहीं रहा। उनके कर्म समाप्ति के पश्चात उनकी विदाई के समय उन्हें परिवार के लिए कुछ उपहार दिए जाते हैं। एवं साथ ही उनका हक उनकी कर्म दक्षिणा भी दी जाती थी। कौलिक वृत्ति होने के कारण कई दिनों तक प्रथा आवश्यकतानुसार सारी रात वाद्य बजाते रहते हैं। उस समय उनके पास उदर पोषण का दूसरा कोई मार्ग न होने के कारण उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए इस कठिन वृत्ति को अपना लिया था।

(ख) सामंतों के शासन काल में विभिन्न गाँवों में यूद्ध कौशल के अभ्यास के लिए इस गंडा बाजा की सहायता ली जाती थी। इसमें शारीरिक व्यायाम, शस्त्रास्त्र चालना की विभिन्न दिशाओं, खेल, कुस्ति, क्रिड़ा के लिए स्वतंत्र वाद्य छंद बजाए जाते हैं।

मनोरंजन

कोशलांचल में मनोरंजन विभाग का धनी है। एकक, देवता तथा गोष्ठि सभी सांगीतिक कर्मों में मधुर वाद्य छंद परिवेशण कला में गंडा बाजा कलाकार महिर हैं। ध्वनि मिश्रण प्रभाव दर्शकों के अंग प्रत्यंग भी चल-चंचल हो जाते हैं। एवं इसके कुछ अंश को लेकर आज भारत विश्ववंदित हो पाया है।

(क) यहाँ नारी-पुरूषों के लिए स्वतंत्र विभाग हैं। एवं प्रत्येक विभाग के अपने स्वतंत्र पार है। अतः मनोरंजन विभाग में गीत से लेकर वादन एवं नृत्य का प्राधान्य अधिक है।

(ख) सर्वसाधारण के नृत्य में जिसप्रकार कई पार है उसी प्रकार प्रत्येक देवी- देवताओं के नृत्य के लिए भी स्वतंत्र पार हैं।

प्रत्येक विभागों में बजने वाले पार या ताल

धर्म/ अध्यात्म :

पीठ पूजन

देवानुभूति

अन्यान्य उत्सावों में देव पूजन

१. पीठ पूजन - पीठों के नाम -

(क) पथेई, डंगेई, चँपातलेन, समलेई, पाटमेसरी, गँगासागरेन, हीरासागरेन, घँसिएन, पाटखँड़ा, निशि, सुरसुरी, मानकेश्वरी माहेश्वरी, जाड़ेन, बूढारजा, डंगर बूढा, वस्त्रेन, मेटाकानी, कलास्त्री, मालत्री, बारभाई, बारभाई लांत बूढा, सरब मँगला, बाट मंगल, कुठी मँगला, बरून बूढा, ठुँटी बुढी उमादेई, डंगर खुँटा,

झारेन बुढ़ी, सुलिआ, बाउती, कंदादो, कांदुल बुढ़ा, दे ढालखाई, घँन्टासनी, बढेन बूढ़ा इत्यादि पीठ देवी पूजन के समय सुलह सिरडी (षोलह सृखंला) बजती है।

सुलह सिरडी (षोलह पूजा) बाजा क्या क्या ?

१. आदि घात, २. पतर उछेन ३. बाएल कढा, ४. मुजा बसा, ५. गरामपति नीता ६. खड्डाँ धुआ, ७. बेलतल पूजा, ८. कुम बुडा या पाएन बुडा, ९. बरूण पुजा, १०. छतर धुआ, ११. छतर पुजा, १२. डका या बरन, १३. देअना, १४. दे बसा, १५ धुपम्ररा बएठा देखा, १६. उभा

देवानुभूति या देवताभरा

क) देवानुभूति – जिन देवी – देवताओं के लिए उत्सव आयोजन किया जाता है वे किसी पीठ के देवी देवता न होकर पूर्ण रूप से पथप्रांत या अस्थायी देवता होते हैं। यह आयोजन एक दिव्यशक्ति को ध्वनि विज्ञान के माध्यम से मानव शरीर में अवतरित करने का एक आयोजन है। इस कार्य के लिए एक देहुरी, एक बरूआ, दो बाहाधरू, एक हूला धरू, एक छतर घरू और ५ गंडा बाजा सह कलाकारों की आवश्यकता होती है।

सबसे पहले क्षेत्र प्रस्तुति के लिए 'ग्रह टला' नामक दिगबंधन क्रिया संपादन के बाद अस्थायी देव स्थली को अच्छी तरह से साफ करके उसकी लिपाई- पोताई करके एक तोरण / चाँदनी से सुशोभित किया जाता है।

द्वितीयतः एक अस्थायी पत्थर के दुकड़े या खूँट (छाता खंभा) शरीर में सिंदुर, गुडहल फुल की माला पहना कर देवपीठ निमंत्रण किया जाता है। सामने के हिस्से पर चावल की पुंजी द्वारा विभिन्न आदि परंपरा के यंत्रों का चित्र बनाये जाते हैं। एवं उसी के ऊपर अस्त्र –सस्त्र छत्र रखकर देहुरी द्वारा पूजन कार्य किया जाता है। ध्यान देने का विषय यह है कि इस पूजन कर्म में किसी भी वैदिक मंत्रों के उच्चारण नहीं होते।

तृतीयतः : गंडा बाजा के द्वारा सर्वसाधारण को सामिल होने के लिए 'डंका' पार का प्रयोग होता है। इस पार के द्वारा वार्ता प्रेरण भी किया जाता है। यह वाद्य छन्द सुदुर प्रसारी है। इस वाद्य ध्वनि को सुनते ही पास के अंचल के श्रद्धालु उत्सव स्थल पर एकत्रित हो जाते हैं। मानसिक किए हुए विश्वासी श्रद्धालु पूजा सामग्री, फूल, बेल, के पत्ते, दीप, गुड से पाक किया हुआ 'जुगार', बस्त्र इत्यादि से भरे थाल लेकर आते हैं। निर्धारित स्थान पर अपने लाये हुए दीप (वयाँ) बएठा जलाकर एकाग्रता के साथ पूजा स्थल पर बैठे रहते हैं।

चतुर्थतः : देवताभरा या देवीभरा उपासना में अस्थायी देवपीठ के सम्मुख चावल की दो पुंजियों से यंत्र का चित्र बनाया जाता है। एक में बरूआ, पत्र विछाकर बैठता है। दूसरे यंत्र को अपलक नयनों से ध्यान से देखता रहता है। देहुरी दिग बंदन करते हुए बरूआ का अष्टांग वंदन समापन करता है। उसके बाद गंडा बाजा में आदि घात भरनी का आरंभ होता है। वाद्य ध्वनि शब्द के गुंजते ही वहाँ उपस्थित बालक, बुढ़े जवान सब हूलहूली (मुँह से की जाने वाली एक विशिष्ट आवाज) हरिबोल ध्वनि से परिवेश

को बहुत गंभीर बना देते हैं। उसके बाद गंडा बजा के माध्यम से जिस देवी- देवताओं के लिए निर्धारित षोलह भरणी या सुलह भरणी वाद्य छंद क्रमानुसार है। प्रत्येक वाद्य छंद में निर्धारित ध्वनि से देवता भरण के लिए बजाया जाता है। बैठा 'बरूआ' की अवस्था स्वभाविक न रह कर धीरे धीरे वह विभिन्न प्रकार से क्रियाशील हो उठता है। वाद्य के छंद और बरूआ के अंग षंदन परिवेश के बहुत गंभीर कर देता है। लोमहर्षक स्थिति हो जाती है। शिशुओं के लिए भय का वातावरण बन जाता है। विस्वास के अनुसार बरूआ के देवत्व प्रप्ति के उपरांत सामयिक नृत्य, बरदिआ, नगर परिक्रमा, अस्थायी पीठ स्थल पर वापसी, बलीभूजा, पुनः उददाम नृत्य 'पणव' ऊपर चडकर विश्राम किया जाता है

अन्यान्य

विवाह – बंदापना, ब्रतोपनयन, ग्राम्य देवता पूजन, भूमि पूजन, धान्य रोपण, धान्य छेदन, खला पुजा, धान गृह पूजन आदि कार्य में भी देव आशीर्वाद विशेषतः मंगल कार्य के लिए देव निमंत्रण, देव गणसन आदि करने की विधि है, साथ ही सामूहिक रूप से गाँव के मुख्य रास्तों में गंडा बाजा बजाने की प्रथा है। इसमें भी कई पार या छंद देखने को मिलते हैं।

अर्थ : दूसरों के लिए अपने श्रम के प्रतिदान स्वरूप कुछ कुछ अर्थ लेने की व्यवस्था भी है। यही गंडा बाजा कलाकारों की वृत्ति होती है।

किस कर्म के लिए अर्थ की मांग होती है ?

क) व्यक्तिगत कर्म जैसे ; विवाह, ब्रतोपनयन, अणु रोग निवारण के लिए पूजा, शोभायात्रा, व्यक्तिगत देव पूजन, क्षेत्र पूजन, जन्मोत्सव, शव शोभा यात्रा, विभिन्न जातियों की प्रथाओं में स्थित विधिओं के पालन के लिए निर्धारित अवधि के लिए अतिथि निमंत्रण आदि में अर्थ की मांग होती है।

ख) समर अभ्यास, राज दर्शन आदि तथा अन्यान्य समाजिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत कार्यों के लिए मुल्य चुकाना पडता है।

काम:

डालखाई, माएला जड़, चुटकुचुटा, जात्रफूल, मँदार, गलार, नचनिआँ, रसरकेलि, डका हका, घुमरा, ढाप आश्रित नृत्य – गान के लिए तथा सिंघ खेल आदि।

मोक्ष :

क) परभाति (प्रभाति), बजा साल, लहकी गरामपति (ग्रामपति), पथेई आदि गंडा बाजा कलाकार स्वइच्छा से परिवेशण करते हैं। किंतु आदिवासी संस्कृति के अंतर्गत पंचभूतों में सामिल प्रकृति को भी विभिन्न देवी देवता की मान्यता देते हैं। अतः आवागमन के समय जिन जिन देवी – देवताओं के दर्शन होते हैं उनके लिए भी स्वतंत्र पार निर्धारित हुए हैं।

क्षेत्र के अनुसार कलाकार अपने अपने बुद्धि- ज्ञान का प्रयोग कर वादन करने के कारण एक दल की वादन शैलि दूसरे दल से भिन्न लगती है तथा नियमित छंद न होने के कारण जनमानस में स्थायी होकर रहना संभव नहीं होता है।

इस प्रकार चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, भेद या आध्यात्म, सामाजिक, अर्थनैतिक तथा मनोरंजन

विभागों में क्या क्या बजते हैं एवं उस बाद्य छंद का नाम क्या है ?

धर्म क - १. पतर उछेन, २. मंगल, ३. बाटचाली, ४. बाएल कढा ५. कलसी बुड़ा, ६. बरून, ७. छतर धुआ ८. पुजी कटा या जंतर कटा, ९. दे बरन, १०. दे बसा, ११ धुप मरा, १२. क्यौँ बएठा दिआ, १३. उभा, १४. रसादेश, १५. सुलह पूजा भरनी, १६. बएल बरा या बरूआ निमंत्रण : पहूड़ या पहड़ ।

ख- बाट मंगला, सरब मंगला, कुठि मंगला, समलेई, पाटनेशरी, मानिकेशरी, मेटाकानि, बुडढी माउलि मालभंगा, नगरेन, चँपातलेन आदि देवताओं के स्वतंत्र पार संगृहित हैं ।

देवता भरा सुलह भरनी

क- पतर उछेन (स्वतंत्र छंद)

ख- आदिघात- १. भरनी, २. रासनी, ३. मंजमरा, ४. भेलकि, ५. आवाहन, ६. देवीभरा, ७. अंगखेला, ८. उदंड ९. शिखाबंधा, १०. अभिशोक, ११. रसावेश (स्वतंत्र) १२. देवता छड़ा, १३ उभा, १४. चकरमरा या चकरकेलि, १५. उरघेन, १६. छिडेन या पहूड ।

अर्थ और काम

इन दोनों पर्यायों के लिए कुछ स्वतंत्र बोल होने के साथ साथ कुछ बोल धार्मिक परंपरा के बोलों के साथ अर्थ उपार्जन के काम में व्यवहार करते हैं । उन सभी पारों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं ।

राज्याभिसेक, नगर भ्रमण, राज खुली आदि ।

योद्धा या सैन्यों की उन्मादना के लिए :

खँडा बुला, गुजेर मरा, बाहा धरानी, खाक पिटा, मुदगर बुला, आदि, गउरबाडी, सिघखेल आखड़ा, जुहामरा, रपटा, मुरेन, आदि और कई नक्षत्र परिस्थिति के अनुसार नाम और पार हैं ।

काम या मनोरंजन तथा सामाजिक :

विवाह : माएट अना, ताल अना, सुता गुरू, काँकर मुल गनसन, तेल हलदि चढा, गनसन, मंगल गनसन, पिलानचा दुर्ला, मडो ठाहाड़े, बरन, मडो नाच, रसरकेलि, माएलाजड़ आदि) पाएन पएलटा, टुकेल दुर्ला नचा, आबिहारी पाएन पका, दे गुडी गनसन (विभिन्न देवी- देवताओं के निर्धारित पार) बर गालसेका, बर बनकीमरा, बीरबेश नचनिआँ, हँका बजा पार (बेटी की शादि) बंदना बसा, चउल टिका घर बुला (विरह) बह बहरा, जुआ खेल, हल्दि तेल उतरा ।

मनोरंजन :

डालखाई, रसरकेलि, माएला जड़ आदि तथा मनोरंजन स्थल पर गीत नृत्य के साथ ताल बिठाकर करने के लिए कई नए पार या छंद

मोक्ष : अंतीम यात्रा के लिए जो छंद या पार बजता है उसे दरगड़ बाजा कहते हैं । सरधि और मंगल

बाजा अंतीम पर्याय में बजता है।

प्रत्येक क्षेत्र देवी देवता तथा विभिन्न जातियों की स्वकीय परंपरानुसार कुछ जगह भिन्न भिन्न पार बजते हैं।

वि.द्र : कई बाद्य छंद लुप्त हो गये हैं। वर्तमान के वरिष्ठ गंडाबजा कलाकार कहते हैं कि पुर्वसुरियों के द्वारा परिवेशित बाद्य छंद सर्व साधारण में प्रसिद्धी तथा आदर न मिलने से उसे लोग भूल गये हैं।

क्रियात्मक

- क्रियात्मक विषयों की दो अध्यायों के माध्यम से आलोकपात करने का प्रयास कर रहा हूँ।
- क- केवल कलाकारों के मुखनिशृत वाणी से संगृहित बोल
- ख- प्रत्येक चलचित्र के माध्यम से संग्रह किये गये बोल उल्लेख किये गये हैं।

किस कर्म के लिए कौन सा बोल बजाया जाता है ?

एक निर्दिष्ट देवता के कल्पित रूप चरित्र के प्रतिक्रियात्मक भावावेश के लिए एक साधारण व्यक्ति के शरीर में उस देवता का अवतारण किया जाता है। जिसे कि लौकिक भाषा में देवता भरा या दे अना कहते हैं अंधविश्वास का आरोप लगने के बावजूद यह प्रथा आज तक प्रचलित है एवं इसके प्रति जन समर्थन विश्वास के साथ है। इस देवता भरा या दे अना प्रथा को संपूर्ण करने के लिए दो धाराएँ हैं। पहली है सुलह पुजा एवं दूसरी बेदिभरा सुलह भरनी।

बेदि भरनी – या (सुलह भरनी)

भरनी शृंखला आरंभ से पहले कलाकार गाड़ंबाजा के द्वार आदिघात संचार कर देव आमंत्रण विधि में एकाग्रता, अपने वादन शैली की श्रेष्ठता, आरंभ से अंत तक निर्भूल परिवेषण के लिए पूर्व प्रस्तुति करते हैं।

आदिघात : प्रायत : जाति का होता है।

- १- गिडि गिडि गिडि गिडि। गिडि गिडि गिडि गिडि
- २- गिडि गिडि गिडि गिडि। गिडि गिडि गिडि ताता
- ३- गिजा गिजा गिडि तड तड। तार गिजा गिडिझाऽ गिडजा गिडि तऽ
- ४- ऽडि गिजा गिजांग गिडि। गिजांग ऽडि गिजांग तडतड
- ५- ऽगि जिधि ऽणकणक। ऽडि गिजा ऽड गिजा ताक ताक
- ६- ऽगिजा गिजा गिजा डिऽऽऽ। ऽ गिजा गिजाड गिजिडि ऽऽऽ
- ७- गिजा गिजारि जाडि जिडि ऽऽऽ। तडिता तिताति डिताति ताऽ

८- तारगिजा गिडा गिडजा गिडक ।
गिडिजा गिक गिजो गिके ।
गिड गिहि गिडि गिडि

तिस्र :

- १- गिड जाडि गिडा गिज डिकि ताक
ताक ताक गिजा गिडि ताक तिडतिड
- २- गिडि जागि डिजा ऽगि डिजा गिडा ऽतिड डाऽ
तिडि ताक तिता ऽकि तिता किड ताघिड ताघिडा ।
- ३- जार गिडि टागिडजा खऽ ऽत

तिस्र एवं चतुरस्र , मिश्र, खंड, संकीर्ण छंडानुसार अनेक वाद्य प्रचलित हैं। अतः इसी क्रम में कलाकारों की योग्यतानुसार वाद्य, छंद होता है। उसके बाद दे अना या देबता भरा आरंभ होता है। पुनः हरिबोल -हुलहुली ध्वनि के माध्यम से गंडाबाजा से बेदि भरनी का आरंभ होता है। क्रमानुसार बेदि भरनी से षोलह पार परिवेशित होकर समापित होती है आदि परंपरा की योग साधना।

बेदे भरनी या षोलह भरनी

क- तर उच्छेन स्वतन्त्र छंद :

तार गिजा गिडि घिड झाऽगिताऽ गिजा गिडि तार गिडा गिडि झा गिड त्रता कड कड
घाडि घाडि ऽऽ गिडा घिडिगिडि झाखटा ताऽता घागिज घागिज ऽऽ गिडा घिडि घिडिड झाऽ
खीटा तऽता

ख- आदि घात :

डिड जाऽ गिड जाऽ गिड जाऽ घिड तिक

१. भरनी :

ऽतार घिडजा गिडजा घिडक

२. रासनी :

गिजाक जाडिडि ताकता गिडाऽ घिडिजा घडिजा

ऽताक तागिडि ताकता तागिड तडतड ताऽता

३. मंजमरा :

गिजा गिजो गिजो गिडिंग

गिजो गिजो गिजो घिडिंग

गिजो गिजो गिजो घिडिंग

गिजो गिगो गिजो घिडिक

४. भेलकि :

इड गिजा गिजाहा । गिडा गिजाहा ॥ गिडि घिजहा ताकिट । ताक ताक

५. आबाहन :

जाड गिजा गिजा जागि नाक ऽहा ऽऽ गिजा गिजा जागि नाक झाहा ऽऽ
जाड गिजा गिजा जागि नाक घांगि ऽऽ कटा कटा तित तित ता ऽऽ

६. बेजीभरा :

तार गिजि झाऽ गिंता घितऽ
१२ मात्र दो गुट मे बजते है

७. अंगखेल :

गिड झँऽ गिडि ताऽक ताऽक
जार गिजि ताऽऽ ताऽक ताऽक
मा मंगला पार सदृश त्रिष्टप छंद

८. उदंड :

गिडि गिडि गिड गिड घघीं
गिजो गिजो गिजो घित

९. शिखाबंधा :

कई स्थानों पर 'उदंड' पार के साथ एक जेसा बजता है। विशेष कुछ स्थानों पर सामान्य परिवर्तन देखने को मिलते है।

घितो गितो गितो गिडंता आदि।

१०: अभिशोक :

इस पार में देवी देवता मानव शरीर में आने के बाद दैव अलंकारों में सजाया जाता है। जैसे घागर, जालाजल माल, बाहाबना, गुडहल माल, सिंदुर, पाँव में पँरी लगाकर किया जाता है।

११: रसावेश (स्वतंत्र)

गिडि जाडा घिडंग। गिड जाऽ घिगिं

१२: देवता चढा :

गिड जाँ गिडजाँ गिडजा गिडजा
गिजाणा घिडंग गिजाता घिग

१३: उभा :

सामायिक सरल वाद्य बजाकर बाजा बंद कर दिया जाता है। देहरी द्वारा धूप दीप अर्पण के बाद देहरी और बरूआ के बीच आपस में बात चीत करते हैं। तब अवतार के समय आदि घात से कुछ अंश बजाया जाता है।

१४. चकर मरा या चकर केली

घिंग् गिडजा गिडजा (एक पाद त्रीष्टप छंद)

१५: उरघेन :

घिडिगं गिडजा गिडजा (एक पाद त्रिष्णुप छंद)

१६. छिडेन बा पहुड़ :

बरूआ, देहरी, बाहधरू के साथ गंधर्व बाद्य भी (१) (से एक जन विश्वास का पर्व समाप्त होता है) विज्ञाम करेंगे । उस समय सामान्य कुछ लौकिक देवी देवताओं के पार बजाते हैं ।

आविर्भूत देवी नगर परिक्रमा कर पीठस्थलि पर प्रत्यावर्तन करने के बाद हुलहुली –दारिवोल ध्वनि से मुल देवता के पार, एक पाद त्रिष्णुप छंद पार जोरों से बजता है । उस समय बरूआ ढोल के ऊपर चडकर उददाम नृत्य करता है । बव समय मनुष्य शरीर में देवत्व अवतरण करने का समय । अचानक बरूआ निस्त्रज दो जाता है । बाजा भी बंद कर दिया जाता है । अतः यहाँ 'बोल' लिखना उचित नहीं समझता ।

इस शेलह भरनी से कई अंश अब लुप्त हो गये हैं । वर्तमान कुछ नूतन संयोजनाएँ होकर देव कार्य संपादन किए जाने के कारण धीरे धीरे परंपरा मलिन होती जा रही है ।

षोहल भरनी का दोने लोकधारा तथा शास्त्रीय नाम उल्लेख किया गया है । जिसके द्वारा कुसंस्कार या अंधविश्वास के अपवाद से लोक संस्कृति बच सकती है ।

लोकधारा	शिष्टधारा
१. भरनी	भरणी (भरण करना)
२. रासनी	रंजनी
३. मंजमरा	मंजनी
४. भेलकि	सम्मोहनी
५. आबाहन	शक्ति आकर्षणी
६. वेजिभरा	अनुप्रवेशिका
७. अंगखेला	उदात्तधारणी
८. उदंड	प्रचंडा
९. शिखाबनंधा	शिर्षाबस्थित
१०. अभिषेक	बिलासी
११. रसावेश	अनुरंजनी
१२. देवता चडा	शक्तवेश
१३. उभा	आवभाव
१४. चकरमरा या चकरकेलि	चक्र मंजरी
१५. उरघेन	शातीकरा
१६. छिडेन या पहुड़	बिश्राम / त्याहि

अंथ :

राज खुलि :

गिडि गिडि जागि नाक नाकटऽ घिनाऽ कडा तिडतित ताऽ

गुजेरमरा :

गिजडि गिंजाड

बाहाधरा (कुस्ती) :

गिजि गिजि जाणा गिजडि

खाकपिटा :

इघि जाड ताक ताक

मुदगर बुला :

गुजेर मरा तुलऽ

गउर बाडि :

गिजि गिजा गडि ताऽ कता ऽक

सिंघ खेल आखडा :

गिजे घिग ताक ऽता कऽ ताक

जुहामरा :

गिडि गिडि घाऽगि जार गिडा घाऽगि गिड झाऽ गिजा गिजा

घाऽऽ गि घा ऽऽगि गिजा जाडा तत तात ऽता तिग

झपटा

गिडि गिडि गिडि गिडि गिडि गिडा झाऽ

घिऽ डऽ गिड घाऽगि ताता ताता

चकरि/ मुरेन :

गिज जिड गिज जाड गिड गिड गिज जाडा

खुरुव खेल :

जार गिजा झा घाऽगि घागिऽ

बिःद्र

बिवाह :

माएट पका

डाल अना / मडो डाहालि अना

सूता गुरु बा काँकेर मूल

गनसन

तेलहलदी चढा

देगनसन

मंगल गनसन

पीला दुर्ला नचा

मडो डाहालि बरन

रसरकेली

मालाजड

माएला जड

मडोडालखाइ

पाएन पलटा

धूकेल दुर्ला नचा

पथेइ गुडि गनसन

बरपिला गालसेका

बरबनकि मरा

बीर बेश

मडो नचनिया

हँका बजा पार

झिअ बिवाहँ बंदना बसा

चउल टिका

घरबुला (बिरह)

बह बहरा

जुआ खेल

हलदि उतरा

मनोरंजन – मनोरंजन विभाग को दो भागों में देखा जाता है :

क) कौलिक बृत्तिधारी गंधर्व या गंडा कलाकार

ख) द्वितीय मंच कला प्रायतः उच्च वर्गों के द्वारा संयोजित, संपादित परिकल्पना सौंदर्य बोधक धारा में। अतः पार आदि उल्लेख के समय दोनों तरफ के प्रचलित पार या बोल का अवतरण किया जा रहै।

पहले पारंपारिक लोकधारा के अंतर्गत मनोरंजन विभाग का अवतरण किया गया।

डालखाइ प्रायतः चार प्रकार के प्रचलित होती

आ रही है।

क) पथेइ डालखाइ,

ख) डाहि डाल खाई

ग) कुठि डालखाइ

घ) मडो डालखाइ।

स्थान तथा परिवेश के अनुसार छंद बजते हैं। पथेइ डालखाइ : कौनसे स्थान तथा परिस्थिति में यह नृत्य संपादन होता है ?

कोशलांचल या ओडिशा के पश्चिमांचल में डालखाइ एक गण पर्व है। अश्विन महीने के शुक्ल पक्ष अष्टमि तिथि में अविवाहित लड़कियाँ भाई के दीर्घजीवी होने की कामना करके देवी (षुलह कुठि) के पास व्रत रखते हैं। (नवमी उपासना उद्जापन के बाद उसी हाथ में जिउँतिआ, भाई सदा जीवित रहे कहकर खीरे या भिंडी के ऊपर कुछ धागों से बने जिउँतिआ को गाँठ बाँधकर रखा जाता है।) उस धागों से एक एक सहोदर भाई के हातथ में बाँधने के बाद जल ग्रहण करती है। उसके बाद गाँवों के दूसरे भाइयों के हाथ में बाँध्यकर भाई स्वीकार करती है। इसी कारण अपनी आत्मरक्षा के लिए बहने अपने भाइयों से आशा रखती हैं। इस प्रकार के महान भाईचारे का पर्व तथा संहति अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

अष्टमि तिथि प्रातः से गाँव की छोटी-बड़ी सभी विवाहित लड़कियाँ भी एकत्रित होकर गंडा बाजा के साथ जलाशय को स्नान करने के लिए जाती हैं।

जलदेव के पूजनोपरांत जलाशय से रेत निकालकर बालुका लिंग की स्थापना कर पूजा करती है और पूजा

सामग्री प्रस्तुत करने के लिए पूर्ण कुंभ लेकर हुल हुली के साथ घर लौटती है। १०८ दूब और १०८ अक्षत चावल एक पते में लपेटकर सहोदर तथा गाँव के भाइयों के लिए करती है। सारे दूबों का गुच्छा बनाकर एक नए छोटे खीरे या भिंडि के साथ एक पत्त लपेटकर शाम को देवस्थली को लेकर उपासना करती है। इस उपासना के मुख्य अंग हैं नृत्य, गीत, एवं वाद्य। इस त्रिधारा के बिना उपासना को विफल माना जाता है। कुठि उपासना को ऐसे चार भागों में विभाजित करके गंडा बाजा के ताल के अनुसार नृत्य करती है।

क) पथपांत में युवक – यूवतियों के एकत्रित होने के स्थान पर यह मनोरंजन उत्सव मनाया जाता है। यह कार्य सुबह एवं शाम को होते हैं।

डाहि डालखाइ :

गाँव के बाहर किसी निर्जन स्थान पर केवल युवतियों के बीच आशु पदों के माध्यम से एक दूसरे पर व्यंग कसने की प्रतियोगिता होती है। वहाँ कोई पुरुष नहीं जा सकते। परंतु गंडा बाजा के कलाकार वहाँ उपस्थित रहकर बाजा बजाते हैं।

कुठि डालखाइ

देवी उपासना के पीठ पर प्रजक के द्वारा पुजा संपादन के बाद उपासना करने वाली युवतियों द्वारा नृत्य गीत का प्रदर्शन होता है। यह उनके मुल इष्ट लख्य निपुणा देवी पार्वती को संतुष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता है।

मडो डालखाइ

यह विधि विवाहोत्सव में मडोडाहाली रोपण के बाद मडुआ (डाली से बनाई छावनी) के नीचे नृत्य करती है। यहाँ नारी के उम्र की कोई पावंदि नहीं होती।

गिजा कझ् गिजा कझा जगि डाक गिडि नाक तागि जिडि

गिजा कटा गिजा किट् । जिगि डाक डिग ताक ता गिजिडि

ठेका गिजि गिजि झाडा गिजिडि खिताक

छिडेन/ त्याहि :

गिजा गिडि ताक गिडाक

गिजा गिडि ताकि गिडाक (गिजाक)

वि.द्र : विशोषत : इस डालखाइ नृत्य वाद्य, गीत के साथ एक आदिवासी, द्रविड़ और आर्य परंपरा का मिश्रण संभव हो पाया है। इस व्रत पालन के लिए सभी जातियाँ एकत्रित होकर दुर्गा आदि नाम के अनुसार डालखाइ नामकरण किया गया। उपासना धर्मी 'डालखाइ' आदि परंपरा का एक संस्कारित रूप है।

डालखाइ देवी के विषय में एक लोक कथा सुनने को मिलती थी। पुरातन काल में समुद्र मंथन के बाद देवता स्वर्ग में रहकर विलास व्यसन में डुबकर अपने कर्तव्य की अवहेलना कर रहे थे। देवों के देव महादेव ने सोचा कि इन विलासी देवताओं को परामर्श देकर कोई लाभ नहीं।

देवता देखकर उदबूद्ध होंगे यह बात सोचकर शिव जी यज्ञ कर्म करने के लिए यज्ञ सामग्री,

लकड़ी, कुश, मृग चर्म, मधु, वन फूल संग्रह के लिए मेरू पर्वत की ओर गये। पूजा सामग्री संग्रह करते करते कैलाशपति शिव पसीने से ओतपोत हो गये। जो सब शीतल परिवेश में निवास करते हैं सुमेरू पर्वत के उत्तप्त परिवेश का सहन कैसे करते देखते देखते सहसा देखा थोड़ी दूर में एक बाँकि (जल कुंड) है। स्नान के लिए जाने से पहले संगृहित पूजा सामग्री लकड़ी, नव उत्पन्न दुव आदि को बाँकि के घेरे पर रख कर स्नान के लिए जल में प्रवेश किया। ठीक उसी समय जाने कहीं से एक बछड़ा आ गया। एवं उस बाँकि के घेरे में रखे नव उत्पन्न दूव को खाने लगा। जल के भीतर से महादेव ने उसे रोकने के लिए चेतावनियाँ देने के बाद भी वह न रुका। शिवजी जल से बाहर आ गये, दुव खा रहे बछड़े के गाल में धरे से स्पर्ष कर दिया स्पर्ष कर देने से ही बछड़े का सिर घड़ से अलग होकर महादेव के हाथों में आ गया। शिवजी को भारी चिंता हुई। स्वयं मृत्युंजय को आज गो हत्या का दोस लग गया। जगत निंदा करेगी बड़ी बात नहीं पर कैलाश में विद्रोह की संभावना को टाला नहीं जा सकता। महादेव का वाहन बैल है और बछड़ा उनके वंशधर अतः शांस्त्रि निश्चित था। उसके बाद शिवजी कैलाश नहीं गये। कई मुनि-ऋषियों से मिले। उनसे गो हत्या निवारण के उपाय प्राप्त करने की चेष्टा की। परंतु कोई भी गो हत्या के दोष निवारण का अचूक उपाय न बता सका शृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के पास भी गये। पर कोई लाभ न हुआ। निराश हो कर लौटते समय सोचा कि भगवान विष्णु की सहयता ली जा सकती है। वे क्षीर सागर पहुँच गये। ध्यान के बल पर विष्णु जी को शिवागमन का दृश्य दृश्यमान हो गया। उनकी निद्रा भग्न हुई। शिवजी के पहुँचते ही उनका अभिवादन कर विष्णु जी ने उनके आगमन का कारण पूछा। एवं हाथ में बछड़े के सिर जड़ा देखकर पूछा, यह आश्चर्य कैसे? शिवजी ने सारी घटना वर्णन करके सुनायी तो विष्णु जी खिलाखिलाकर हसने लगे, उन्हीं ने कहा है महेश्वर आप ही इस धरा के स्वामी हैं। आप जिस शृष्टि के स्वामि हैं उस भूमि में कई ऐसे स्थान हैं जहाँ गोहत्या दोष मुक्ति संभव है। आप जान बूझकर मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं। फिर भी सामान्य उपचार यह है कि आप पाप नाशिनी गंगाजी में स्नान कर दोसमुक्त हो जाएँ। केवल हसते रहे एवं हसते हुए कहने लगे हे शृष्ट पालनहार हरि इसी कारण मर्त्य के लोग आपको 'छलिआ' कहते हैं। आप तो जानते हैं कि मेरे सिर पर गंगा है। दिनरात गंगाजल से स्नान कर शीत के प्रकोप से रक्षा पाने के लिए शरीर में इसका प्रलेपन भी करता हूँ अगर गंगाजल से पाप धुल जाते तो मैं स्वर्ग पाताल क्यों घूरता रहता।

शिवजी की बात सुनकर विष्णुजी बोले प्रभु लगता है आप मेरी बात ठीक से नहीं समझ पाये। मैंने पापनाशिनी गंगा की बात कही है, आपके सिर की गंगा की बात नहीं। शिवजी ने मौन के साथ प्रस्थान किया। उन्होंने सोचा कि मर्त्य में दूसरी गंगा कहींपर है एवं उनका नाम पापनाशिनी गंगा के नाम से प्रसिद्ध परंतु मुझे – उसका ज्ञान नहीं। अनुसंधान कर पता लगाया कि पापनाशिनी गंगा का उद्गम पवित्र स्थान गंधगिरी या गंधमार्दन पर्वत माला है। शिवजी गंधगिरी का दर्शन कर विमुग्ध हो गये। मन ही मन विष्णु जी को धन्यवाद दिया। कहा यह गंधागिरी कैलास पर्वत से भी मनोरम है प्राकृतिक वन – पर्वत – झरने के साथ कई प्रकार के जीवन रक्षक औषधिय गुल्म – लता, फूल फुल बहुत चमत्कार है। जल कुंड में स्नान करते ही उनके हाथ से बछड़े का सिर अलग होकर गिर गया। शिवजी को गोहत्या के दोष से मुक्ति मिली।

(वि.द्र आज भी नृसिंहनाथ में एक छोटा सा कुंड है जिसका नाम 'गाई पघा' है। शिवजी को पापमुक्त कराने के कारण इसका नाम गाई पघा नाम से प्रसिद्ध है। आज भी लोगों में विश्वास है कि उस कुंड में स्नान करने से पाप से मुक्ति मिलती है। उस पानी में पापमुक्त जीवन की आशा में हजार की संख्या में लोग स्नान करते हैं।)

कई दिन व्यतीत होने के बाद शिवजी कैलास लौटे। माता पार्वती ने शिवजी से उनके इतने दिनों तक कैलास में अनुपस्थित रहने का कारण पूछा। शिवजी ने एक एक करके आमूलचूल सभी घटनाओं का वर्णन कर देवी को कह सुनाया। पार्वती जी यह सब सुनकर अश्चर्य होकर सोचने लगी कि संसार में शिवजी के आस्थान से भी अधिक सुंदर कोई और जगह है। उस जगह के दर्शन के लिए माता पार्वती भी गंधगिरी गयीं। जाकर देखते हैं कि शिवजी की अनुभूति संपूर्णरूप से सत्य है। कितना मनोहर स्थल है। समस्त अवतारी भगवानों का आगमन इस गंधागरी में हुआ है। कितने झरने, पर्वत माला के प्रत्येक पर्वत के नामों पर ध्यान देने से कैलास पर्वतमाला जिस प्रकार शेष नाग की स्थिति को प्रमाणित करता उसी प्रकार गंधगिरी भी से साप मूड़ से लेकर बुढासबर तक शेषनाग की स्थिति प्रमाणित करते हैं। कई झरने कई गुँफा के साथ किसी पुराण युग से आधुनिक युग तक कई इतिहास साक्षी यह गंधगिरी। इस प्रकार प्रसस्ति गान कर माता पार्वती गंधगिरी के सुशोभित परिवेश में आनंद उपभोग कर रही थीं।

तो माता चिर किशोरी। नवयोवना एक किशोरी को ऐसे एक घने जंगल में पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए देखकर गंधगिरी में राज करने वाला त्रिपाल नाम का एक दुर्ज्ञात अशुर राजा किशोरी के सम्मुख खड़ा हो गया। रूप बर्ण नव योवना माता किशोरी को देखकर असुर के मन में भ्रम उत्पन्न हुआ। एवं रति निवेदन कर विवाह करने के लिए माता पार्वती को उसने बाध्य किया। परंतु माता ने स्थिर, शांत रूप से त्रिपालासुर की अपचिंता को देखकर कहा, थोड़ा सोचिए में कोई युवती नहीं हूँ। मैं तुम्हारी माँ हूँ। पार्वती जी की बात सुनकर असुर हसने लगा। कहा मेरी एवं तुम्हारी आयु का अंतर देखो, तुम कैसे मेरी माँ हो सकती हो ? इस व्यर्थ बात को छोड़ों सहमत हो जाओ। मैं जात में असुर हूँ। असुर में दया होती तो मेरा परिचय असुर क्यों होता ? उसने बलात्कार का उद्यम किया। इसके उद्यम करते ही माता पार्वती के प्रखर निश्वास से गंधगिरी पर्वतमाला के द्रुम भी डगमगाने लगे। निश्वास शब्द पर्वतमाला में गूँजने लगा। शक्तिमयी असुर से बोलीं, अरे पापी तुझे यौन लालसा है न तो संभाल कहकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गयीं और योनी विस्तार किया महायौनी से चौसठ योगिनियों का जन्म हुआ। सभी योगिनी रूप वती, सुंदर यूवती। एक साथ उन्होंने सहवास के लिए त्रिपालासुर पर आक्रमण किया। प्राणों की भिक्षा माँगते हुए बड़ी विकलता के साथ वह देवी का सरणापन्न हुआ। माँ किशोरी ने त्रिपालासुर को उसके पूर्व जन्म की बात याद दिला दी। एक बार त्रिपालासुर माता पार्वती का द्वारपाल हुआ करता था। वह हर समय यह सोचता था कि शिवजी की तरह सुंदर, बलवान पुरुष, पत्नी माँ पार्वती सदा यौवना होकर भी संसार के सुख को त्याग कर सदा योग क्रिया में लिप्त। एक महायोगी महेश्वर तो दूसरी महायोगिनी चंडि। क्या लाभ है। संसार में भोग करने के लिए आये हैं। योग करते करते मृत्यु होजाने से एसा एक दुर्लभ मानव जन्म मिलना असंभव लगता है। माता को योग बल से द्वारपाल की दृष्टिंता का ज्ञान हो गया। उन्होंने शाप दिया कि मर्त्यलोक में असुर जन्म ले। इस पुर्व जन्म गाथा सुनकर उसने माँ के आश्रय की

भिक्षा की। उसे एक बाघ का रूप दे दिया। लोक कथा में है कि बाघ के पृष्ठ भाग में काम सिहरण उत्पन्न होने के कारण माँ ने उसे अपना वाहन बनाकर उसकी पीठ पर बैठ गयीं। असुर ने रति सिहरण उपभोग करते ही माता का वाहन होने पर खुद को धन्य माना।

उपसंहार :

लोक कथा में विश्वास –अविश्वास तर्क के बीच जितने सिद्धान्तों को ग्रहण करने चाहिए वह पाठक पर निर्भर करता है। किंतु यह संपूर्ण सत्य है कि एक कहानी को आधार बनाकर एक उपासना परंपरा एक गणपर्व में रूपांतरित हुई है। विश्वास पर आस्था रखकर आज के अत्याधुनिक युग में भी सारे कोशलांचल या ओडिशा के पश्चिमांचल के सहरोँ तथा गाँवों के बालक से बूढ़े- बूढ़ियों तक यह पर्व पालन करते हैं। यह परंपरा गाँवों गाँवों में विश्व भ्रातृत्व की वार्ता देती है, संहती की रक्षा करती है। मानवीय धर्म पालन के साथ एक नारी की मर्यादा रक्षा के लिए खुद को जिम्मेदार ठहराता है। कैसे और क्यों पालन होता है ?

आदिवासी बहुल आदि परंपरा संस्कृति में विश्वास है कि ईश्वर पर्वती ही इस शृष्टि की स्थिति तथा प्रलयकर्ता विधाता हैं। इसी कारण देवता मानकर भय करते हुए अपने परिवार का इष्ट समझकर शिवजी को बूढ़ा और पार्वती जी को बूढ़ी के शब्द से श्रद्धा से भक्ति से कहते हैं। अतः जिस भूमि ने शिवजी के गोहत्या पाप मुक्ति से त्रिपालासुर उद्धार की महान पौराणिक गाथा को वहन किया है। उसी पधा उसी वृक्ष की डाली पर शिव पार्वती के निवास प्रथा स्थिति के विश्वास को आधार मानकर आदि परंपरा में जल, बालुका पुजन के साथ दुब से जुगार तक अर्पण किया है। माँ की मर्यादा रक्षा के लिए अपनी मर्यादा रखने के लिए माँ की आराधना, उसी डाली की पूजा कर दूसरी युवा मंडली को अपने सहोदर तुल्य भाई बनाकर एक सूत्र में अपनी मर्यादा की रक्षा के निमित्त अपनी प्रथा में बाँधकर रखा है। नृत्य, गीत, वाद्य उपासना से शिवोपरिवार संतुष्ट होते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि शिवोपरिवार ही श्रेष्ठ परिवार। अतः हर बात या अत्सव पुजा आदि में नृत्य, वाद्य, गीत होते हैं।

संगीत भी आदि परंपरा का हृदय है। उसके बिना पिंड ब्रह्माण्ड की स्थिति कभी आदिवासियों से आरंभ करके आदि पुरुष तक विश्वास न करते। वरं व्यवस्थित रूप से इस पवित्र उपासना को परिचालना करने के लिए निर्धारित लोकधारा में बांध दिया है। अतः कर्मकांड के गुरुगंधीर मंत्र को पाथेय न बनाकर पंचवाद्य गंडाबाजा के ऊपर निर्भर कर उपासना से उपस्थापना तक पुर्ण रूप से पालन करते आ रहे हैं।

अतः पंचध्वनि के तालानुसार नृत्य गीत में डबकर मनोकामना की पूर्ति के लिए समर्पित करते हैं। नाम पर ध्यान देने से अनेक गूढ तथ्य हृश्यमान हुए हैं। लोकधारा में विश्वास डाल –पार्वती के प्रतीक एवं 'खाइ' शक्ति स्थिति की ध्वनि- प्रतिध्वनि का खजाना है। जोकि गंधगिरी में एक दुर्गइ खोल या गुंफा है एक वर्त है। दुर्ग रक्षयित्री को दुर्गा (दुर्गा) कहते हैं। दशभुजा सिंह बाहिनी रूप को एक कल्पित रूप माना जाता है आदिवासी परंपरा में। उस दुर्गइ खोल में सामंत शासन से पहले अदिवासियों का निवास तथा अस्त्र भंडार एवं उसके सामने स्थित वृक्ष के नीचे माता के अंग से चौषठ योगिनियों का जन्म

हुआ था अतः 'डालखाइ' को एक पवित्र शब्द, महामंत्र तुल्य मानकर बहुत प्राचीन काल से डालखाई पर्व पालित होता आ रहा है।

इस 'डालखाइ' उपासना का मूल उस्स आज भी डालखाइ नृत्य ही है। देवी का नाम डालखाइ नृत्य का नाम डालखाइ, डाल के नीचे योगिनियों का जन्म। इस प्रकार कई पुरातन इतिहास के साथ जुड़कर यह डालखाइ गणपर्व विश्व प्रसिद्ध हो गया है। संगीत और मानवीय धर्म में आदि परंपरा को मान्यता देकर समस्त काव्यों में व्यवहार कर रहा है।

पुन : उस पार व्यवस्था पर ध्यान देते है :

पथेइ डालखाइ पार का संक्षिप्त मुहुड़ा या मुखड़ा बजाया जाता है।

पथेइ डालखाइ पार – जाति तित्र

जागि घिडि। नाक जागि घिडा। जाडि मिजा गिजडी मिजा जिडी।

धारा / ठेका चतुरत्र

गिजिगिडि जाडा गिजडी

गिडी झाँ झाँ गिजंडी

गिजाक ५५ गिडी ताक गिजाक (मिजाक)

कुठि डालखाइ पार का एक स्वतंत्र वैशिष्ट है। यह पर्याय देवी पीठ के सम्मुख परिवेषण होने के कारण गीत प्रधान होता है। गीत के चार छः पद, आठ पद कुछ स्थानों पर अनेक पदों के साथ पद की रचना को हृदय रूपी बनाते हैं। इस विभाग में स्तुति, शोभा वंदन, डाल उपासना कहानी आदि होते हैं। अतः गंडाबजा कलाकार पहले गीत के छंद रस के साथ गायक के साथ संगीत करता है तब नृत्यांगनाएँ एक ताल में नृत्य करती है। जब गीत समापन होकर नृत्य आरंभ होता है उस समय संपूर्ण रूप से वादक मंडली के ऊपर निर्भर करती है। वाद्यकार पुनः उस तिस्र और चतुरस्र के भीतर डालखाइ के छंदों को ऊपर नीचे कर नृत्य को प्रोत्सहित करते हैं। इसके अलावा दूसरे विभागों में लिपि सहित पार मिश्र, खंड और संकीर्णता का दर्शन मिलता है।

रसरकेलि:

रसरकेलि भी लोकधारा और मंचधारा को लेकर दो भागों में विभक्त हुई हैं। नामकरण से अनुमान लगाया जाता है कि यह स्वर प्रायत छतिस पाटक और आर्यों के आदिवासी संस्कृति में एकाकार होने के बाद का संस्कारित विभाग प्रदत्त गीत प्रधान है। लोकधारा सभी गीतों में राधाकृष्ण, राम सीता धार्मिक चरित्र, गुण, प्रकृति शोभा कृषि गीत आदि प्रायतः शिष्ट ओडिआ भाषा में रचित है। शृंगार रस का अल्प व्यवहार होता है लेकिन मंचधारा में केवल मात्र शृंगार रस का गीत प्रयुक्त होता है। नृत्य में पद भंगी कल्पित होने के कारण कठिन लगता है। वाद्य भी लोकधारा में सरल रूप में है। परंतु साधारण नृत्य केलिए सयोग शृष्टि के लिए दीर्घ तथा जटिल होते हैं। यहाँ लोकधारा और मंचधार दोनों की लिपियाँ दी गयी है। लोकधारा के अंतर्गत जितने सारे पार है उन्हे अल्प समय एवं विस्तृत इतिहास बहन करनेवाले कोशलांचल के इस

गंडा बाजा के परीक्षण या गबेषणा का अंत कहना सही नहीं होगा। केवल सूचित किया जा सकता है कि निजस्व शास्त्रीय गुणों के बिना कोई भी लोकधारा लोकमान्य या सर्व साधारण की परंपरा नहीं हो सकती अतः समय तथा अर्थ का खयाल रखकर कई तथ्यों का संग्रह हुआ है। उन सब में कितने शास्त्रीय गुण है साधारण रूप से उसकी तुलना की जा रही है। यद्यपि इस विषय में पहले से आलोचना हुई है। फिर भी मेरे विचार से कुछ विषयों पर अलोचना की आवश्यकता है।

लोकधारा पूर्णतया सरल तथा भावमय होती है। जहाँ क्रत्रिमता का कोई स्थान नहीं होता। प्रकृति के अनुभव से कलाकार को जितना मिला है उतने को अपनी पूँजी मानकर स्वयं आनंदित होता है। उसके आनंद से संसार स्वतः आनंद विभोर हो जाता है।

इस प्रकार मानव जीवन की अंतर्ध्यान को चेतनशील करने के साथ पंचभूतो से उत्पन्न पंचवाद्य गंडाबाजा ने भविष्य में अपने संरक्षण के लिए लिपिरहित रूप में लिपिशास्त्र के साथ समता रखकर अपनी धारा को निश्चित किया है। इसी के बल से यह गंडाबाजा आज जीवित है। लोक कल्याण की दिशा में महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह किया है। परंतु आज इस लोकधारा के स्थान पर मंच कला या परिवेशण कला का अधिक प्रचलन दिखाई देता है। इस प्रचीन लोकधारा के कुछ पारों के ज्ञान तथा आधुनिकता के प्रभाव के मिश्रण से मंच कला आगे बढ़ रही है। एवं मूल प्राचीन गंडा बाजा अपने अस्तित्व को बचाने के लिए अंतिम साँसों के साथ अधुनिकता से जुड़ रही है। वर्तमान का समय गंडाबाजा के लिए दुःखद समय है। गंडाबाजा कलाकार जिन चारों विभागों में कौशल प्रदर्शन कर अपने ज्ञान की पराकाष्ठा से अपने अंचल को गर्वान्वित करते थे, आज उनके वाद्ययंत्र हैं पर पार नहीं। एवं गंडा बाजा की इस अवस्था के निम्नलिखित में से कुछ कारण हो सकते हैं।

१) यह कला एक निर्दिष्ट गंडा जाति की कौलिक कला है। इसी कारण इसे जनसाधारण में नये रूप में लाने के लिए कुछ सरल समाज के लोगो ने इसे एक नूतन सूत्र के साथ मंच कला या परिवेशण कला का नाम दिया है।

२) विश्वविद्यालयों में परिवेशण कला विभाग खोले गये हैं। वहाँ जो शिक्षा दी जा रही है केवल मंच कला के विषय में। इसी कारण प्राचीन काल से प्रचलित कोशलांचल के गंडाबाजा परंपरा को प्रोत्साहन नहीं मिल पा रहा है।

३) आज के संयोजक, निर्देशक तथा गुरु मनोरंजन पर ध्यान देते हैं। कम समय में मनोरंजन पर ध्यान देते हैं। कम समय में अधिक उपार्जन तथा प्रसिद्धि की आशा रखने वाले हैं। उनके पास गंडा बाजा के हजार हजार पारों या तालों के संरक्षण के लिए समय नहीं है।

४) राजनीति के द्वारा न केवल एक निर्दिष्ट परंपरा और दलित जाति का विनास हो रहा है साथ ही भाविष्य के लिए तिस्र चतुरस्र छंद को छोड़ दूसरे छंदों को गँवाया जा रहा है।

५) प्रायतः कोशलांचल के बेतार केंद्र, दूरदर्शन केंद्र आदि सरकारी संस्थाओं के द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण विषय को नजरअंदाज किए जाने जैसा लगता है।

पहले से लोकधारा के कुछ बोल अवतरण हुए हैं। वर्तमान कुछ परिवेशण कला के स्वीकृति प्राप्त

छात्रों के लिखित बोल के तथ्य अवतरण करता हूँ । जिसमें कि केवल मात्र ताल या पार परिचालना के लिए निम्नलिखित नियम निर्धारित हैं- जैसे

क) उठेन या चढ़ेन

ख) ठेका

ग) चालि और

घ) छिडेन ।

इसमें मंचकला, डालखाइ, हिंदुस्थानी त्रिषूप या दादरा ताल के साथ तुलना कर निम्ननुसार बोल संयोजित किया गया है ।

मंचधारा का परिवेशण काला अतंगत

डालखाइ :

उठेन् :

ताक् ताक् ताक् ताक् झाहँ गिनि

ताक् ताक् झाहँ गिनि (ताक् ताक्) ।

ठेका :

१. गिडिझाँ गिडिझाँ गिझा गिडिझाँ गिडि झो
तिकिताक् तिकिताक् तिताक् तिकिताक तिकिताग् ।

२. गिडिजि गिजाझाँ गिजिजाहँ गिनिझाँ
गिडिजि गिजाझा गिजिजाहँ गिनिझाँ ।

चालि :

गिडिजाहँ गिडिजा गिझाँ

गिडिझा गिडि गिझाँ ताक् ।

(चालि को नृत्यमे २,४ या ६ पार लीयाजाता है ।)

गिड् झाँ झाँ गिड् ता ता ।

गिड् झाँ झाँ गिड् ता ता ।

(नृत्यमे दो प्रकार चालि लीया जाए या कीसी भी एक को भी लीया जासकता है ।)

छिडेन् :

गिझाँ ताकडि ताकडि ताकडि गिझाँ

गिझाँ ताकडि ताकडि गिझाँ

गिझाँ ताकडि ताकडि गिझाँ । गिझाँ

दीतीय प्रकारर डालखाइ 'पार्'

उठेन् :

झाँ गिनिगिनि झाँ गिनिगिन झाँ गिनिगिन झाँ झाँ
तार खिटि खिटि तार खिटि खिटि तार खिटि खिटि ताग् ताग् ।

ठोका :

गिडिजि गिजा झाँ गिड्जाहँ गिन् झाँ
गिडिजि गिजा झाँ गिन् झाँ गिन् झाँ ।

चालि :

गिडिजाहँ गिडिझा गिझाँ
गिडिझा गिडि गिझाँ ता ।
गिडि झाँ झाँ गिडि ता ता
गिडि झाँ झाँ गिडि ता ता ।

रसरकेलि - मात्रा- ६ (दादरा)

उठेन :

गिझाँ गिझाँ गिझाँ ताक्
तिताक् तिताक् तिताक् ताक् (२) तालि
(केतेक स्थलमे तालिकु आग लिआजाता है)

छिडेन् : गिँझाग् गिनिझाँग् गिँझा

चालि बा ठोका :

गिडिझाँ गिडिझाँ गिडि झा झा - ताकिटि किटा(२)
गिँ - ड् गिँ झा गिँ झा झा

छिडेन् :

गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ । गिझाँ

द्वितीय प्रकार :

गिझाँ झो गिझाँ झो
गिँझाग् गिनिझाग् गिँझा
गिँडिझा गिँडिझा गिँडिझा झा - ताकिटि किटा (२)

चालि :

जिनि गिँझा गिजि गिनि गिनिझा
जिनि गिँझा गिजि गिनिझा

छिडेन् :

गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझा
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ । गिझाँ

माएलाजड पार् : मात्र - ६ (दारदा)

उडेन् : गिडिजि झाँ गिडिजि झाँ

गिडिजि ति ता गिडिजि तिततिता
गिडिजि गिझाँ गिडिजि गिझाँ गिडिजि गिझाँ

तितिति ता(२)

ठेका :

गिडिजि झाँ गिडि गिडिजि गिझाँ
तिकतता ताखिटि ताक्ता खिटा

चालि : गिडिजि गिझाँ गिडता तिता

छिडेन : गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ

गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ । गिझाँ

बजनिआँ - मात्रा-६ (दादरा) पार्

उठेन : गिजिजि झाँ गिडिजिझाँ

गिडिझाग् घिनि तखिटि खिटा
गिडिझाँ गिडिझाँ गिडि जाहाँ जाहाँ ।

ठेका :

तिकि तिकि तिकि ताक् तिकि तिकि तिक तिक्
तिकि तिकिता तिता
गिझाँ गिनि गिडि जाहाँ गिनि गिडिजाहाँ
गिनि गिडि जि गिझाँ (२)

तिकि तिकि तिकि ताक् तिकि तिकि तिकि ताक्
तिकि तिकिता तिता

चालि :

ता खिटि गिझाँ गिन् गिनिझाँ
गिडिजि गिझाँ गिनि गिनिझाँ

छिडेन:

गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ
गिझाँ ताकिडि ताकिडि गिझाँ । गिझाँ
नँचनिआँ - मात्र - ८ (कहरबा)

उठेन् :

घिडि घिडि घिडि घिडि घिडि घिडि झो
तित्कि तित्कि तित्ति तित्ति तित्ति तित्ति ता
गिझँ ताक् ताखिटि ताक् गिझाँ गिझाँ

ठेका :

गिड्जि गिणिजि झाँ
गिड्जि गिणिजि झाँ
गिड्जि गिणिजि झाँ । तित्ति तित्ति ता ।

चालि :

गिड गिझा गिड गि गिड गिता
गिड गिझा गिड गि गिड गिता ।

झिडेन् :

गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझँ गिझाँ
गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझाँ गिझाँ
गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझाँ गिझाँ

नचनिआँठ - पार (द्वितीय श्यौली)

उठेन :

घिडि घिडि घिडि घिडि घिडि झो
तित्ति तित्कि तित्कि तित्कि तित्कि ता
घिडि घिडि घिडि घिडि घिडि झो
तित्कि तित्कि तित्कि तित्कि तित्कि ता

गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझाँ गिझाँ ।

ठेका :

गिड्जि गिणिजि झाँ
गित्जि गिणिजि झाँ ।
गिड्जि गिणिजि झाँ । तित्कितित्कि ता

चालि :

गिँड गिझा गिड गि गिड गिझा

गिँड गिझा गिड गि गिड गिझा ।

छिडेन् :

गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझँ गिझाँ

गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझँ गिझाँ

गिझाँ ताक् ताखिटि ताक् गिझँ गिझाँ

सजनी : मात्र -६ (दादरा)

सम्बलपुरी संगीत के पारंपरिक रीति के अनुसार सजनी एक वाद्य रहित गीत । इन

गीतों में साधारणतः अन्तरीण स्वर इ ताल होता है । इसमें वाद्य प्रयोग

भारतीय परंपरा में वेद पुराण से आरंभ कर अत्याधुनिक साहित्य संस्कृति आदि में भेद का कोई स्थान नहीं । सार्वभौमिक विचारधारा ही भारतीय संस्कृति का मेरु दंड है । मर्यादा पुरुषोत्तम के साथी एक वनवासी गुहक थे । द्वापर की कथा, अनेक कहानी, गोपि-गोपालों से लेकर द्वाकाधीशतक यहाँ तक कि महाभारत जैसे महाकाव्य में भी संस्कृतिको अग्राधिकार देने में अवहेला नहीं कीं गयी । वेद के रचयिता सुत्र मुनी, शुकदेव की जन्म कथा सुवित करता है कि प्रकृति से लोकधारा, शिष्ट धारा अपने अपने स्थान पर पुरी तरह प्रतिष्ठित है । पंचम वेद भी लोकधाराओं शिष्ट धाराको प्रोत्साहन मिला है । इतिहास में भारत में दोनो लोकधाराओं तथ विधार्थ या शिष्ट धारा को प्रोत्साहन मिला है, वे आज भी अपनी अपनी स्थिति को साबि

१. बलांगिर, २. कलाहांडि, ३.नुआँपड़ा, ४.बरगड़, ४.देवगड, ३.झारसुगुड़ा, ७.सुंदरगड़, ८.बौद्ध व बउद, ९. सुवर्णपुर, १०. संबलपुर के साथ आठमल्लिक और फुलवाणी अंचल को भी लिया जा सकता है ।

ये जिलाएँ वन, पर्वत, झरने तथा आदिवासी बहुल जनवाती के साथ एक निर्धिष्ट आदि परंपरा धारानु गामी है । इस जिला के पुर पल्लि में सब जगह गंडा बाजा का व्यवहार रहते करते हैं । इतने बड़े भुखंड में आदिवासी, दलीत, पतीतों से आर्य एकाकार होकर ओडिशा की आधी जनसंख्या एक शुत्र में बंधकर आपनी चर्या के भीतर सभी कर्मों में इस गंडा बाजा कों ग्रहण किया है । खुशी के साथ गंडा बाजा को अपने जातीय वाद्य के रूप में सम्मान देते आ रहे हैं । पंचभूत या पंच् पंचवाद्य को श्रद्धा से पूजते आ रहे है । आज तक लोगों में लोकधारा के जीवित रह पाने का कारण मनुष्य से जड जगत तक की स्थिति साव्यस्त करनेवाला कंपन और उसका प्रभाव हैं । साथ ही नवरस देकर वाद्य छंद का निर्माण, पाँच वाद्य यंत्रों के पाँच भिन्न - भिन्न ध्वनियों को एक नाद में रुपांतरित करना सर्वेपरि वर्ग साधारण में विनियोग । सभी कार्यो में इस गंधर्व वाद्य या गंडाबाजा व्यवहार योग्य एवं प्रभावशाली है ।

कौनसे भाग का अभाव रहता है ?

१. लिपि, २.मात्रा विभाग आजका पुस्तक प्रचलन, ३. आत्म प्रचार, ४. सरकारी तथा गैर सरकारी

प्रोव्साहन, ५. विभिन्न कालेंज या नीजी शिक्षानुष्ठान द्वारा इच्छानुसार चिठा प्रस्तुत तथा शिक्षादान, ६. डी. जे. के प्रभाव से गंडाबाजा के प्रति अनादर की बृद्धि के अनेक उदाहरण है।

इसके कारण गंडाबाजा और पार की स्वतंत्रता है :

मानव सभ्यता के क्रम विकाश में वह मुख्य भागिदार है। मन चेतन की सुपरिचालना के लिए अनाहत आहत दोनों दिशाओं में दक्षता। ज्ञात अज्ञात में शब्द ध्वनि के अल्पत्व बहूलत्व विनियोग तथा समय या लय को बाँध रखने की दक्षता। और कई दिशाएँ हैं, जो एक धुरीण मंडली के माध्यम से संस्कार पानें योग्य है। किसी भी लोकधारा में निहित विशिष्ट दिशाका निरिक्षण करते समय सर्वनिम्न शास्त्रीय नियम के साथ तुलना करना अत्यावश्यक है।

लोक मार्ग : क्रीयांगनी ग्रहोजाति कला लय।

यति प्रस्तारक चेति ताल प्राण दश स्मृत : ॥

अर्थ

काल मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति, एवं प्रस्तार इन दश तालों का प्राण है। तदरूप जाति :

ख) चतुस्त्र, तिस्र, मिश्र, खंड और संकीर्ण

चतुस्त्र: ४ मात्रा। तिस्र: ३ मात्रा। मिश्र : ४ मात्रा, खंड : ७ मात्रा, संकीर्ण : ९ मात्रा

ग) लय विलंबित, मध्य दत

घ) ध्वनि के अल्पत्व, बहूलत्व के अनुसार लघु कुरू निर्णय तथा विभागी करण।

ड) ग्रह : धारण के लिए ४ विधियाँ सम, विसम, आगत, अनागत आदि।

तत्त्वपूर्ण शास्त्र निर्देशानुसार लोकधारा के प्रत्यक्ष क्रियात्मक विभाग की तर्जमा या गवेषणा करने से भारतीय शास्त्रीय परंपरा का और एक नूतन रूप कोशलांचल की लोकधारा में विद्यमान है।

क्रमश : इस चौथे रिपोर्ट की अपस्थापना के पश्चात यह विस्कृत रूप से इसे संबंधित पुस्तक में स्थानित करने के लिए हम प्रतिश्रुति बद्ध्य है।